डॉ. पूरनचंद टंडन

अनुवाद : अर्थ और महत्व

आज का युग सूचना-प्रौद्योगिकी का युग है जो 'विश्व कुटुंबकम्' की पुनीत भावना को साकार कर रहा है। एक समय वह भी था जब हम एक नगर से दूसरे नगर, एक राज्य से दूसरे राज्य तथा एक देश से दूसरे देश में हफ्तों, महीनों या वर्षों लगा देते थे। हमारे साधन पूरी तरह से सीमित थे। यही नहीं, दूसरे देश जाकर हम अपनी बात को समझाने में या दूसरे की बात समझने में अत्यधिक कठिनाई महसूस करते थे। हमें प्रदेश या विदेश भी अपरिचित-सा अथवा पराया-सा लगता था। इसलिए लोग प्रदेश गमन करने से पहले हजारों बार सोचते थे, विदेश अथवा प्रदेश में पूरी तरह निश्चिंत होकर कार्य-व्यापार के लिए आगे नहीं बढ़ पाते थे। लेकिन आज समय बदल चुका है। अब हम विकसित हो चुके हैं। विदेशी कंपनियाँ अथवा बहुद्देश्यीय व्यापार-तंत्र अपने पैर पसार रहा है। आज हजारों भारतीय विश्व के कोने-कोने में रच-बस रहे हैं। विविध संस्कृतियों, रिवाज़ों, भाषाओं आदि का निरंतर आदान-प्रदान हो रहा है। हमारी वैचारिक भावभूमि विश्व के कोने-कोने में प्रसारित हो रही है। इन सभी कार्यों को सफलतापूर्वक पूरा करने में 'अनुवाद' को उपयोगी उपकरण के रूप में देखा जा सकता है। संपूर्ण विश्व में ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में हो रही संवृद्धि और अद्यतन जानकारी आदि को अन्य भाषाओं में 'अनुवाद' के माध्यम से ही जाना जा सकता है। ऐसे में यह जानना जरूरी हो जाता है कि अनुवाद है क्या?

अनुवाद : अर्थ और स्वरूप

'अनुवाद' शब्द बना है – अनु + वाद से। संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'वद्' धातु का अर्थ है – बोलना या कहना। 'वद्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय जुड़ने से यह भाववाचक संज्ञा बन जाता है, जिसके जुड़ने से 'वाद' शब्द बनता है और इसका अर्थ होता है

– 'कहने की क्रिया' या 'कही हुई बात'। 'वाद' से पूर्व 'अनु' उपसर्ग जुड़ने से 'अनुवाद' शब्द बना है। सामान्यतः 'अनु' उपसर्ग का अर्थ 'पीछे' या 'बाद में' होता है। अतः इसका व्युत्पत्तिमूलक अर्थ हुआ – 'किसी कही हुई बात को बाद में या फिर से कहना अर्थात् 'पुनः कहना'।

संस्कृत का यह 'अनुवाद' शब्द हिंदी में आकर 'भाषानुवाद' कहलाने लगा। भाषानुवाद अर्थात् किसी एक भाषा में कही गई बात को बोलचाल की प्रचलित भाषा में पुनः कहना। इस प्रकार पारिभाषिक रूप में अनुवाद का अर्थ हुआ – 'किसी एक भाषा की किसी उक्ति या कथन विशेष के अर्थ को अक्षुण्ण रखते हुए दूसरी भाषा में उसे यथासंभव यथावत् प्रकट करना या मूल भाषा के शब्दों के स्थान पर लक्ष्य भाषा के शब्दों में प्रकट करना।'

भारतीय दर्शन, मीमांसा, उपनिषद तथा वैदिक साहित्य से 'छाया', 'भाषा', 'टीका', 'व्याख्या', 'भाषानुवाद', 'भाषांतरण, 'तरजुमा' एवम् 'उल्था' आदि अनेक शब्दों की सुदीर्घ यात्रा पूरी करता हुआ यह शब्द उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में आकर पारिभाषिक शब्द 'अनुवाद' के रूप में स्वीकृत और मान्य हो गया।

हिंदी में 'अनुवाद' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'Translation' शब्द के पर्याय रूप में प्रचलित है जो वस्तुतः लैटिन भाषा से आगत है। यह Trans और Lation के योग से बना है। 'Trans' का अर्थ है – 'पार' और 'Lation' लैटिन भाषा से आया है, जहाँ यह 'ले जाने की क्रिया' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतः 'Translation' का अर्थ हुआ – 'इस पार से उस पार या दूसरे पार ले जाना।' अभिप्राय यह है कि एक भाषा के कथ्य को अर्थात् 'स्रोत भाषा' की वस्तु को दूसरी भाषा अर्थात् 'लक्ष्य भाषा' में ले जाना ही 'ट्रांसलेशन' कहलाता है। यहाँ भी दोनों ही शब्द जोड़ने, एकता स्थापित करने के प्रतीकार्थ को ही द्योतित करते हैं।

जिस मूल भाषा में बात कही जाती है उसे 'स्रोत भाषा' और जिस भाषा में अनुवाद करना होता है, उसे 'लक्ष्य भाषा' कहा जाता है। इस प्रकार अनुवाद एक भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में यथासंभव समतुल्य एवं सममूल्य पुनः सृजित करने की प्रक्रिया है। किसी भी सफल अनुवाद की परिभाषा देते हुए कहा जाता है कि अनुवाद का मतलब है किसी बात को एक से दूसरी भाषा में उतारकर कहना। आवश्यक है कि वह बात दूसरी भाषा वाले के पास पहुँच जाए, बात का भाव सही-सही पहुँचे और बीच में कहीं वह अपना प्रभाव न खोए। जिस मात्रा में यह परिणाम आता है उसी मात्रा में अनुवाद सफल कहा जाता है। इसलिए अनुवाद (Translation) एक प्रकार से 'स्रोत' और 'लक्ष्य' भाषा के बीच की सभी दूरियों को समाप्त कर एक सेतु-निर्माण

करता है, जो बिना किसी रुकावट के आवागमन का मार्ग प्रशस्त करता है, अभेद-दृष्टि को विकसित करता है, तमाम अंतराल एवं खाइयों को पाट देता है।

आज के दौर में भिन्न-भिन्न भाषा समुदायों के बीच एक-दूसरे से संपर्क बढ़ने के कारण अनुवाद की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी विभिन्न भाषाओं के मध्य अनेक क्षेत्रों (आर्थिक, राजनैतिक, साहित्यिक आदि) में अनुवाद के माध्यम से आदान-प्रदान होता है। इस प्रकार से 'अनुवाद' निरंतर अपना कद ऊँचा कर रहा है। आज अनुवाद मनुष्य की विभिन्न संस्कृतियों के बीच एक महत्वपूर्ण सेतु की भूमिका का निर्वाह कर रहा है। अनुवाद के माध्यम से ही आज 'वसुधैव कुटुंबकम' की अवधारणा सार्थक सिद्ध हो रही है। अनुवाद के महत्व के संदर्भ में डॉ. नगेंद्र 'बाईबल' के ग्यारहवें अध्याय में लिखित एक कहानी का उल्लेख करते हैं कि – ''जब सृष्टि बनी, तब सारी पृथ्वी पर एक ही भाषा और एक ही बोली थी। जब लोग पूर्व से आगे की ओर बढ़े, तब उन्हें शिनार प्रदेश में एक मैदान मिला और वे वहाँ बसने लगे। उन्होंने आपस में कहा ''आओ, हम ईंट बनाकर उन्हें पका लें।'' वे पत्थर के स्थान पर ईंट और गारे के स्थान पर मिट्टी का डामर काम में लाए। फिर उन्होंने कहा ''आओ, हम अपने लिए एक नगर बसाएँ और एक ऐसी मीनार बनाए जिसकी चोटी आसमान तक पहुँच जाए। इस प्रकार हम नाम कमा लें और हमें बँटकर पृथ्वी पर इधर-उधर फैलना न पड़े।''

''उस नगर और मीनार को, जो मानव-पुत्र जल-प्लावन से बचने के लिए बना रहे थे, देखने के लिए स्वयं प्रभु उतर आए। उन्होंने कहा, ''देखो, अब तक वे एक ही जाति के हैं और उन सबकी एक ही भाषा है। यह तो उनके कार्यों का आरंभ-मात्र है, आगे वे जो कुछ करना चाहेंगे, करते जाएँगे। इसीलिए अब हम नीचे उतरें और वहाँ उनकी भाषा में एक ऐसा संभ्रम पैदा करें, जिससे वे एक-दूसरे की भाषा ही न समझ पाएँ।'' इस प्रकार प्रभु ने उन्हें वहाँ की पृथ्वी-तल पर दूर-दूर तक फैला दिया। तब शिनारवासियों ने मीनार बनाना छोड़ दिया। लोग उस मीनार को बेबेल की मीनार कहने लगे।'' (अनुवाद : विज्ञान सिद्धांत और अनुप्रयोग, संपा. डॉ. नगेंद्र, पृ. 2) 'बाईबल' के इस अंश से यह ज्ञात होता है कि उस घटना के बाद मानवता भिन्न-भिन्न राष्ट्रों, धर्मों, जातियों, भूखंडों, समाजों आदि में विभाजित हो गई और फलस्वरूप संसार में हजारों भाषाओं की उत्पत्ति हुई और उन सभी भाषाओं में निहित अमूल्य संपदा के आदान-प्रदान हेतु 'अनुवाद' एक महत्वपूर्ण सेतु के रूप में सामने आया। तब से अनुवाद एक ऐसी कड़ी के रूप में सामने आने लगा जो भाषिक दूरियों को दूर कर समानता का धरातल पैदा करती है। अनुवाद को संपूर्ण विश्व का महानतम् एवं महत्वपूर्ण कार्य बताते हुए

जे.डब्ल्यू. गेटे कहते हैं कि ''अनुवाद की पूर्णता के संबंध में कोई चाहे कुछ भी कहे, अनुवाद विश्व के सभी कार्यों से अधिक महत्वपूर्ण और महानतम् कार्य है।''

अनुवाद की प्रासंगिकता

आधुनिक युग, संचार-क्रांति तथा सूचना प्रौद्योगिकी का युग है। इस संदर्भ में आज अनुवाद की प्रासंगिकता-महत्व असंदिग्ध है। ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीक के क्षेत्रों में जिस प्रकार निरंतर उन्नति एवं प्रगति होती जा रही है, संपूर्ण विश्व सिकुड़ता चला जा रहा है। भूमंडलीकरण की अवधारणा एवं विश्व-ग्राम की संकल्पना का आधार 'संचार' तथा 'अनुवाद' को माना जा रहा है। आज जिस तरह से ज्ञान-विज्ञान का क्षितिज विस्तृत होता जा रहा है, वैसे ही देश-विदेश के अनेक भाषा-भाषी समुदायों का मिलाप भी संभव होता जा रहा है। ज्ञान-विज्ञान के विश्व-व्यापी प्रचार-प्रसार से मानव चेतना नए आयामों को छू रही है। विश्व बंधुत्व एवं पारस्परिक संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के लिए 'अनुवाद' उपयोगी सिद्ध हो रहा है। अनुवाद की इसी निरंतर बढ़ती प्रासंगिकता के कारण भारत सरकार को ''राष्ट्रीय अनुवाद मिशन'' का गठन करना पड़ा। उच्च शिक्षा का भारतीय भाषांतरण एवं कालजयी भारतीय साहित्य का भारतीय भाषाओं में परस्पर अनुवाद देश की एकता, समन्वय और समभावों को सशक्त बनाएगा, परस्पर दाग-द्वेष को दूर कर एक आत्मीय समझदारी विकसित करेगा। साथ ही शिक्षा का सामन्यीकरण हो सकेगा तथा अनुवाद द्वारा एक भाव समाज में व्याप्त हो सकेगा।

प्राचीनकाल में अनुवाद सर्जनात्मक साहित्य तक ही सीमित था, परंतु आज अनुवाद हमारे जीवन-व्यवहार का अनिवार्य हिस्सा बनता जा रहा है। वास्तविकता यह है कि अनुवाद, भाषाओं का न होकर संस्कृतियों का होता है। इस तरह अनुवाद दो संस्कृतियों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान का सशक्त एवं कल्याणकारी 'सेतु' बनता है। ऐसे में अनुवाद एक सांस्कृतिक सेतु का भी काम करता है। इसीलिए 'ट्रांसलेशन' केवल ट्रांसलेशन नहीं रहता अपितु 'ट्रांसरिलेशन' बन जाता है।

भारत में अनुवाद की बहुआयामी परंपरा प्राचीनकाल से चली आ रही है। संस्कृत के वैदिक, औपनिषदिक तथा पौराणिक साहित्य से होती हुई यह अनुवाद परंपरा मध्यकाल तक चली आई। मध्यकाल में संतों ने संस्कृत और पालि के साहित्य, दर्शन, धर्म, नीति, वैद्यक, ज्योतिष, व्याकरण आदि के अनेक ग्रंथों का युगीन भाषा में अनुवाद करके जनजागरण किया। वहीं 19वीं शताब्दी में भारतीय प्राचीन ग्रंथों के अनुवाद के साथ-साथ पश्चिमी साहित्य और विशेषकर अंग्रेजी के अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों के भी अनुवाद हुए। भारतीय साहित्यकारों ने अंग्रेजी, संस्कृत, बांग्ला, मराठी, गुजराती, तेलुगु, तमिल, मलयालम, पंजाबी, उड़िया आदि भाषाओं के साहित्य को हिंदी में अनूदित किया। इस प्रकार समग्रतः देखें

तो राजनैतिक चेतना, राष्ट्रीय एकता, अखंडता तथा सांस्कृतिक नवजागरण में अनुवादकों तथा अनुवाद ने निश्चित ही युगांतरकारी कार्य किया है।

आज अनुवाद मनुष्य के जीवनयापन के संदर्भ में भी उपयोगी सिद्ध हो रहा है। वरिष्ठ या कनिष्ठ अनुवादक, तत्काल भाषांतरणकर्ता, हिंदी अधिकारी, प्राध्यापक, राजभाषा निदेशक, उपनिदेशक, सहायक निदेशक, राजभाषा अधिकारी, समाचारवाचक, संवाददाता, संपादक, विज्ञापन लेखक, कंप्यूटर अनुवादक, बैंक अधिकारी आदि अनेक पदों पर अनुवादकों की नियुक्तियाँ होती हैं या हो सकती हैं। केंद्र सरकार या राज्य सरकार के कार्यालयों, बैकों, अस्पतालों, रेलवे, एयर लाइंस, पर्यटन, संसद, विधान सभाओं, राजदूतावासों, अकादमियों, प्रकाशन संस्थानों, सरकारी प्रेस, रेडियो, टेलीविजन, विज्ञापन एजेंसियों, शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थानों में विज्ञापन-तकनीक तथा प्रौद्योगिकी से संबद्ध कार्यालयों, केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो, भाषा संबंधी निदेशालयों तथा संस्थानों, विश्वविद्यालयों, स्कूलों तथा जनसंपर्क आदि कार्यालयों, होटलों, प्रदर्शनियों, पुस्तकालयों, खेलों, बाजार भावों, वित्त-वाणिज्य, अर्थशास्त्र, बीमा, कोश-विज्ञान, पारिभाषिक शब्दावली बनाने वाली संस्थाओं तथा साहित्य आदि अनेक क्षेत्रों में अनुवाद की उपादेयता एवं प्रासंगिकता असंदिग्ध है। आने वाले समय में अनुवाद की प्रासंगिकता निरंतर बढ़ेगी और मानव जाति के उद्धार तथा कल्याण में इसकी भूमिका और अधिक रचनात्मक होगी। अनुवाद का चौतरफा विकास राष्ट्र की एकता को बल देगा, 'सहृदयता' के धरातल पर सभी को परस्पर जोड़ेगा। अनुवाद के विकास से सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों को बल मिलेगा तथा 'आत्म विकास' के स्थान पर 'सर्व-भाव विकास' की स्थापना हो सकेगी।

अनुवाद की महत्ता एवं उपयोगिता इस बात से भी प्रकट होती है कि भारत सरकार ने 'अनुवाद' को बढ़ावा देने के लिए 'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' की स्थापना की है। यह भारत सरकार की एक पहल है, जिसका उद्देश्य ज्ञान-आधारित विषयों की पुस्तकों का संविधान की आठवीं सूची में शामिल भाषाओं में अनुवाद कराना है। 'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' की संकल्पना का विचार भारत के प्रधानमंत्री के एक 'वक्तव्य' से उदित हुआ है, जिसके अंतर्गत उन्होंने इस बात पर बल दिया है कि ज्ञान के विविध क्षेत्रों में जानकारी के लिए उसका अनूदित पाठ लोगों तक पहुँचना आवश्यक है। 'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' की फरवरी 2006 में दिल्ली में एक सभा के माध्यम से शुरुआत हुई। तब प्रो. उदयनारायण सिंह, तत्कालीन निदेशक, भारतीय भाषा संस्थान द्वारा कार्यक्षेत्र के मुख्य मसौदे की रूपरेखा तैयार की गई। इस संस्था के उद्देश्य हैं – अनुवाद-शिक्षण, अनुवाद एवं अनुवादकों की उपलब्धता के विषय में जानकारी देना, अनुवाद एवं अनुवादकों तक अपनी पहुँच सुनिश्चित कर उसका प्रचार-प्रसार करना एवं अनुवाद कार्य को प्रोत्साहित

करना और जनता तक पहुँचाना। 'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' के इन महत्वपूर्ण प्रयासों से ग्रामीण एवं कमजोर वर्ग के वे विद्यार्थी लाभान्वित होते हैं, जिनकी पहुँच मूल पाठ तक कम होती है, क्योंकि वे अधिकांशतः अंग्रेजी में होते हैं। इस संस्था के द्वारा विभिन्न विषयों की जानकारी प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्तियों को भी लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' केवल अनुवाद का ही प्रचार-प्रसार नहीं कर रहा है, अपितु वह राष्ट्रीय एकता को भी मजबूत कर रहा है।

अनुवाद वास्तव में आज के भारत की अनिवार्य जरूरत बन गया हैं। सिनेमा इसका सशक्त प्रमाण है, जो डबिंग, टाइटलिंग, अनूदित रूप आदि के कारण पूरे देश को तो जोड़ ही रहा है, विदेशों में बैठे स्वदेशियों और प्रवासी भारतीयों को भी एक सूत्र में बाँध रहा है। मामला बाजारवाद का हो या चिकित्सा जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र का, योग का हो या हास्य का, व्यंग्य का हो या धर्म और साधना का, सभी में अनुवाद ने पूरे देश को जोड़ने-बांधने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। धारावाहिकों के माध्यम से भारतीय भाषाओं की अनूदित कालजयी रचनाओं का संदर्भ हो या अखिल भारतीय स्तर पर प्रसारित-प्रदर्शित होने वाले वे समाचार हों, जिनका स्रोत अंग्रेजी है और विभिन्न भारतीय भाषाओं में उनका अनुवाद युद्ध स्तर पर नियमित रूप से प्रेस-एजेंसियों में या प्राइवेट स्तर पर किया जाता है। विज्ञप्तियाँ हों या सरकारी-गैर सरकारी विज्ञापन, सूचनाएँ हों या मार्गदर्शन करने वाले निर्देश, प्रचार-प्रसार सामग्री हो या नीति-निर्धारक सिद्धांत, पर्यटन हो या गृह-सज्जा, खान-पान हो या वेशभूषा-आभूषण आदि सभी में परस्पर प्रभावात्मकता पैदा करने तथा आदान-प्रदान करने का कार्य अनुवाद के माध्यम से ही हो रहा है। खेलों की दुनिया हो या आँखों देखा हाल, सीधे प्रसारण हो या समय-समय पर जारी किए जाने वाले सरकारी निर्देश, जनहित का मामला हो या राष्ट्रहित का, सभी में अनुवाद और अनुवादक की भूमिका निरंतर महत्त्वपूर्ण हो रही है।

आज हम पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के साहित्य और साहित्यकारों को जानते हैं तो केवल अनुवाद के कारण। आज हम भारतीय भाषाओं में उपलब्ध नाट्य साहित्य, कथा साहित्य, धार्मिक साहित्य, नीति साहित्य, विज्ञान साहित्य को जानते-पढ़ते हैं तो अनुवाद के कारण। अनुवाद हमें भारतीयता में उतारता है, लगातार डूबने और उसे आत्मसात करने की प्रेरणा देता है। अहंकार-मुक्ति और आत्म-विस्तार का सन्मार्ग भी प्रशस्त करता है अनुवाद।

❑

डॉ. देवशंकर नवीन

सांस्कृतिक संचरण और अनुवाद

अनुवाद, या अनुवचन, या अनुकथन की परंपरा भारत देश में बहुत प्राचीन है। विभिन्न राष्ट्रों के लोग अपने यहाँ की अनुवाद परंपरा को प्राचीनतम साबित करने के लिए विभिन्न राजाओं के शासनकाल के द्विभाषी-त्रिभाषी शिलालेखों का उल्लेख करते हैं। भारतीय अध्येताओं को इस दिशा में अधिक उद्यम करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। प्राक्वैदिक काल की लोक संस्कृति और लोक-जीवन में, वैदिक काल के गुरुकुल के अध्यापन कौशल में, और फिर ऋग्वेद की ऋचाओं का सामवेद में सांगीतिक उपयोग, यजुर्वेद में यज्ञ विधानादिक उपयोग, तथा अथर्ववेद में विधागत परिवर्तनात्मक उपयोग में, उत्तर-वैदिक काल के लोक-जीवन के कृषि संस्कृति से वाणिज्य संस्कृति की ओर प्रवेश में ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदों के विवेचन में, निरुक्त, निघण्टु की रचना प्रक्रिया में, बौद्ध धर्म की अंतरराष्ट्रीय ख्याति में, अश्वघोष की रचना वज्रसूची के प्रचार-प्रसार में, सिद्ध साहित्य के विवेचन में, रामायण—महाभारत के विभिन्न अनुवादों में हम इस परंपरा को ढूँढ़ते हुए आगे तक आ सकते हैं।

कहा जाता है कि अनुवाद की सबसे बड़ी आवश्यकता धर्म, दर्शन, साहित्य, कला के प्रचार हेतु हुई। बात सच भी है। पर इससे भी पहले अनुवाद की प्राथमिक आवश्यकता हुई, मनुष्यों और मानव समुदायों के बीच आपसी समझ बनाने में, ताकि वे एक-दूसरे की भावनाओं और अपेक्षाओं को समझ सकें। एक-दूसरे को जानने की यह पूरी प्रक्रिया थोड़ी जटिल है। यह कई सोपानों में तय हो पाता है। वस्तुतः एक-दूसरे को जानने का अर्थ उसका नाम, गाँव, वर्ण, मुखमंडल जान लेना नहीं होता; इस उद्यम का तात्पर्य उस पूरे पैकेज से है, जो उस जनपद की पूरी संस्कृति को जानने से संपन्न होता है। यह संस्कृति किसी समाज का ऐसा घटक है, जो जनजीवन के आहार-व्यवहार, धर्म, दर्शन, साहित्य, कला...सभी में समाहित रहता है।

जाहिर है कि किसी व्यक्ति को सम्पूर्णता में जानने की पूरी प्रक्रिया उस व्यक्ति

को उसके जनपद और उसकी संस्कृति के साथ जानने से ही पूर्ण होगी। किसी मनुष्य की बोली-बानी, विभिन्न परिस्थितियों में प्रयुक्त उसके भाषा फलक, शब्दावलियों, और किसी विषय-व्यक्ति-परिस्थिति पर दर्ज उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया और से जानी जाती है। इस बात को संप्रेषण के कई फलक के उदाहरणों से इस तरह स्पष्ट किया जा सकता है :

- *ओ ए केशव, एक गिलास पानी ले आओ!*
- *केशव, एक गिलास पानी ले आना!*
- *केशव जी एक गिलास पानी ले आएँगे!*
- *केशव भाई, जरा एक गिलास पानी ले आएँगे!*
- *भाई साहब, एक गिलास पानी की जरूरत है!*

ये सभी वाक्य एक ही भाषा में कहे गए हैं। लेकिन हर वाक्य में संबोध्य और संबोधक के आपसी संबंध और संबोधक के संस्कार परिलक्षित हैं। पहले दोनों वाक्य में स्पष्ट है कि संबोधक और संबोध्य का रिश्ता नियोजक और मातहत का है। लेकिन पहले वाक्य के संबोधक की नजर में संबोध्य के प्रति मानवीय भाव नहीं है, जबकि दूसरे वाक्य में वह भाव भी है। तीसरे और चौथे वाक्य का संस्कार ऐसा है कि संबोधक-संबोध्य का नियोक्ता भी हो सकता है (जो बहुत भला इनसान है) या फिर कोई मित्र। पाँचवे वाक्य से साफ जाहिर होता है कि संबोधक और संबोध्य का रिश्ता यदि पुराना है, और संबोधक का ओहदा संबोध्य से बड़ा है, तो निश्चय ही वह व्यक्ति अत्यंत सज्जन और सरल है, या संबोधक कोई गैर है, तो वह अनुनय कर रहा है।

यह स्थिति अलग-अलग तरीकों से हर भाषा में उपस्थित हो सकती है। ऐसी परिस्थिति में अनुवादक के समक्ष बहुत बड़ी चुनौती खड़ी होती है। यहीं आकर हम मूल रचनाकार के उस मौलिक भाव और आचरण को भी समझ पाते हैं, जिससे निर्देशित होकर वह अपने द्वारा सृजित पात्रों को भाषा देता है, या फिर उन पात्रों के आचरण पर अपनी टिप्पणी करता है। यहाँ तक कि उन पात्रों के सृजन संधान में हो – उसके नामकरण, चरित्र-चित्रण, मनोदशा, सामाजिक-आर्थिक हैसियत, कथोपकथन...सब कुछ में – हम उस रचनाकार का और रचनाकार द्वारा रचे गए समाज के उद्‌भव-परिवेश का संस्कार ढूँढ़ लेते हैं।

बात सच है कि कोई रचनाकार समाज में जो देखता-सुनता-भोगता है, अपनी रचनाओं में उसे ही प्रभावी ढंग से अंकित करता है। जन-जन तक वस्तुस्थिति का असली रूप प्रस्तुत कर वह आम नागरिक की सुसुप्त चेतना को उद्‌बुद्ध करने की चेष्टा करता है, स्थगन से भरे सामाजिक व्यवस्था में हलचल पैदा करता है। जीवनयापन के शांत तालाब में बुराइयों, रूढ़ियों, मानव विरोधी आचरणों, मानव मूल्यों के अवमूल्यन की जो काई-कदाली जम गई होती है, उसमें खरोंच डालकर, कंकड़ी मारकर उसकी तहों को काटता है और

सामाजिक परिदृश्य का परिष्कार करना चाहता है। इन तमाम बातों में भाषा-व्यवहार की जितनी भी परतें होती हैं, वह पूरी तरह समकालीन समाज की सांस्कृतिक संरचनाओं से लिपटी रहती हैं। पाठ चाहे साहित्य का हो, सामाजिक विज्ञान का हो या इतिहास-भूगोल का...भाषा के सांस्कृतिक रचाव से वह पृथक नहीं हो सकती। इसलिए अनुवाद के समय संस्कृति एक अहम तत्त्व के रूप में सामने आती है। अनुवादक इसकी गरिमा-संरक्षण में अपनी समस्त ऊर्जा और कौशल झोंक देता है।

किसी पाठ का अनुवाद करना, केवल उनकी शब्दावलियों, क्रियापदों, और संदेशों का उल्था भर नहीं होता, बल्कि उस पूरी प्रक्रिया में भाषावैज्ञानिक, व्याकरणिक, और कोशीय उपस्करों के उपयोग के अलावा एक अकृश्य काम होता रहता है। वह है – मूल पाठ की संस्कृति का अनुवाद।

उक्त उदाहरणों में, या ऐसे और भी कई उदाहरण सोचे जा सकते हैं, जिनमें शब्दों, पदों का केवल कोशीय अर्थ पर्याप्त नहीं होगा। कोशीय अर्थों में हिंदी के शब्द – 'चाची', 'ताई', 'मौसी', 'मामी', 'बुआ' आदि के लिए अंग्रेजी का एक शब्द है 'आण्टी'। परंतु इन सबके सांस्कृतिक संदर्भ एक नहीं हैं। भाषा के संदर्भ में संस्कृति बहुत बड़ा मसला है। भारतीय संदर्भ में संबंधों को लेकर ही चलें, तो इसका व्याकरण इतने स्तरों का वैविध्य लिए हुए है, और उसका अन्वयार्थ इतना विराट है कि कोशीय अर्थ उस व्याख्या को ध्वनित नहीं कर सकता। परराष्ट्रीय भाषाओं की संस्कृति के साथ तुलना करके देखें तो साफ-साफ दिखाई देता है कि जिस जनपद में साली, भाभी, बहू, चाचा, ताउ, मामा, मौसा, फूफा जैसे संबंध ही नहीं हैं, वहाँ इन संबंधों के साथ किए जाने वाले आचार-विचारों की क्या व्याख्या होगी! वैज्ञानिक, ज्ञानात्मक, वाणिज्यिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, सर्वेक्षणपरक, गणितीय पाठ (अर्थात जिनका संबंध केवल भाषा और तथ्य से है,) में सांस्कृतिक संदर्भ की बातें तो केवल भाषा-व्यवहार और तथ्य के प्रति रचनाकार के रवैये से जानी जाती है, परंतु साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक पाठ (जिसका सीधा संबंध सामाजिक जीवनयापन, आचार-विचार, राग-विराग, लोक-व्यवहार और आचरण-अस्मिता, बिंब-प्रतीक, अलंकार-मुहावरे, भाषा वैविध्य, उक्ति वैचित्र्य से है) का सांस्कृतिक संदर्भ बड़ी व्याख्या की माँग करने लगता है।

पश्चिमी देशों में नाते-रिश्तों की उतनी शाखाएँ नहीं हैं, जितनी भारत में हैं। केवल भारत की ही बात करें तो मिथिलांचल की स्त्रियाँ अपने जेठ और मामा ससुर से उस हद तक परदा और परहेज करती हैं जैसे दोनों एक-दूसरे के लिए अछूत हों। लेकिन देश के अन्य प्रांतों में ऐसा नहीं है। इसका सीधा संबंध वहाँ की दीर्घकालीन प्रथा से है। बिहार, उत्तर प्रदेश में जीजा-साली के रिश्तों में जितना खुलापन और रसपूर्ण परिहास-भरा

रहता है वह केरल में नहीं होता, वहाँ सालियाँ अपने बड़े बहनोई को बड़े भाई का दर्जा देती हैं! फिर से मिथिलांचल की तरफ चलें, वहाँ सालियों के भी दो दर्जे हैं – पत्नी की बड़ी बहन के साथ सास जैसा व्यवहार किया जाता है, जबकि पत्नी की छोटी बहन के साथ पूरा खुलापन रहता है। बिहार के कुछ खंडों में मामी-भाँजे के साथ भी परिहास के रिश्ते रहते हैं। छोटा नागपुर के कुछ खंडों में नानी-नाती के बीच परिहास होता है। उड़ीसा के कुछ क्षेत्रों में दूध का रूढ़ अर्थ 'स्तन' हो गया है, वहाँ पायस को 'दूध' माना जाता है, मिथिलांचल में स्त्रियों का श्मशान घाट जाना वर्जित है, इस्लाम में स्त्रियों का मजार-क्षेत्र में प्रवेश वर्जित है। पश्चिमी देशों की नागरिक-समझ इस बात से पूरी तरह अनुकूलित हो चुकी है कि दो में से किसी एक के, अथवा दोनों के विवाह-पूर्व विवाहेतर संबंध की आशंका से अपना वर्तमान नष्ट न किया जाए, पर ऐसा भारतीय स्त्री-पुरुष सामान्य स्थिति में नहीं सोच सकता।

इन तमाम बातों से आज यदि वे लोग भी वाकिफ हैं, जो कभी इस क्षेत्र में नहीं गए, और उस क्षेत्र की भाषा भी नहीं जानते तो इसका श्रेय अनुवाद को ही जाता है। अलग से कहने की आवश्यकता नहीं, कि ये जानकारियाँ कोई रचनाकार अपने पाठ में सूक्ति की तरह नहीं देते, सभी पक्ष उस पाठ में समाहित होते हैं और अनुवादक को इन सबके संरक्षण और संवर्द्धन का ध्यान रखना होता है। ऐसा कहना चाहिए कि हर पाठ अनूदित भाषा के नए रूप में आकर भावक को यह सुअवसर प्रदान करता है कि वह लक्ष्य भाषा में विवेचित पाठ के सांस्कृतिक संदर्भ, सामाजिक आचार-विचार, जीवनयापन, रहन-सहन, प्रेम-संघर्ष, द्वंद्व-दुविधा के मूल स्वरूप से परिचय करे, उसे जाने, और अपने भौगोलिक परिवेश और सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों से उसका साक्षात्कार करते हुए, अपना तथा अपनी सांस्कृतिक समझ का विकास करे। दरअसल संस्कृति एक अमूर्त, सूक्ष्म और अपरिभाषेय बिंब है। इसे समझा तो जा सकता है, पर उँगली रखकर बताया जाना कठिन है कि संस्कृति यह है। एक जगह बता भी दें कि इस भूखंड, इस समुदाय के लोगों की संस्कृति यह है, तो अगले ही क्षण फिर दूसरी परिभाषा देनी पड़ जाएगी। मानव-सभ्यता के विकासक्रम में सदियों के आचार-विचार, आहार-व्यवहार, रहन-सहन, जीवनयापन, संबंध-सरोकार की प्रथा-परंपरा की परिणति और प्रतिफल की एक शृंखला है जो मनुष्य के जीवन की तरह ही गतिशील और अग्रोन्मुख होती है और इनकी संचरण क्षमता इतनी तेज होती है कि किस रास्ते, किस क्षण इसमें नए किसलय खिल जाएँ, पता नहीं चलता। आज संपूर्ण भारतीय परिवेश के पहनावे-ओढ़ावे, खान-पान, बोली-बानी, आहार-व्यवहार में आई सार्वभौमिकता के मद्देनजर इस बात तो रेखांकित करना बड़ा आसान होगा।

विश्व फलक पर जब से अनुवाद कार्य और प्रकाशन व्यवस्था का चलन हुआ है,

संसार के कोने-कोने से विचार की यात्रा तेजी से होने लगी है। संचार-माध्यम के अपरिमेय संचरण के कारण जिस तीव्रता से विचार का प्रसार हुआ, उसमें वहाँ की संस्कृति का भी प्रभावित हो जाना लाजिमी था। सामान्य-जन की चित्त-वृत्ति, जीवन-वृत्ति और समकालीन शासन-व्यवस्था के दस्तावेज के रूप में साहित्य, समाज विज्ञान, अथवा इतिहास के पृष्ठों में आज तक जो कुछ भी दर्ज हुआ है, और होता चला जा रहा है उन सबका सीधा संबंध समाज और संस्कृति से है। नागरिक परिवेश की वर्चस्वगत नीतियों, संस्कृति और समाजशास्त्र से साहित्य के अंतर्संबंधों, वर्चस्व और प्रतिरोध के नागरिक संघर्षों को लेकर रेमंड विलियम्स, अंतोनियो ग्राम्शी, ई.पी. थॉमसन, रिचर्ड होगार्ड ने पर्याप्त विचार किया है, वह यहाँ विचार का विषय नहीं है। वैसे, अंतोनियो ग्राम्शी की राय में कोई भाषा, जनपद की संस्कृति का ही रूप होती है। उन्होंने समान भाषा-भाषी लोगों की अभिव्यक्ति में ऐतिहासिक और सामाजिक रहने वाले भाषाई अंतर को मुक्त कंठ से स्वीकारा है। यह अंतर व्यक्ति की सामाजिक हैसियत, ऐतिहासिक सूत्र, पारंपरिक संबंध पद्धति, वर्ग-भेद के कारण भाषा प्रयोग की विधियाँ, आर्थिक-शैक्षिक हैसियत के कारण उसके बोध का स्तर आदि पर निर्भर करता है। इसके साथ-साथ संचार-माध्यमों के फैलाव और अनुवाद-कार्य द्वारा जो विचारों का विनिमय स्थानांतरण होता है, और आगत विचारों का उस सामाजिक परिवेश में अधिग्रहण होता है, उससे वहाँ की संस्कृति, वहाँ के नागरिक जीवन की प्रक्रिया प्रभावित हुए बगैर नहीं रह पाती है। यह बात सच है कि हर जनपद के साहित्य का सीधा संबंध वहाँ की भाषा में अनुगुंफित होता है, किंतु इसके साथ सच्चाई यह भी है कि वह भाषा खुद ही वहाँ के नागरिक जीवन की उपज होती है। हर क्षेत्र की भाषा के सुस्थिर स्वरूप में वहाँ के नागरिक जीवन का अतीत मौजूद रहता है, जो जनपदीय संस्कृति से रससिक्त रहती है।

अधिक पीछे न जाएँ, भक्ति-आंदोलन पर ही नजर डालें तो वहाँ सांस्कृतिक उत्थान और नागरिक जीवन के संघर्ष की छवियाँ अनेक रूपों में सामने आती हैं। अपने विराट और विस्तृत चिंतन के साथ प्रो. मैनेजर पांडेय ने गौर किया कि भारतेंदु युग के बालकृष्ण भट्ट भक्तिकाल के साहित्य को 'जनसमूह के हृदय-विकास' की रचना स्वीकारते हुए उसे अपने युग का श्रेष्ठ साहित्य माना है।

भारतीय परिदृश्य में वस्तुतः भक्ति आंदोलन ऐसी घटना है जिससे न केवल भारतीय साहित्य को बल्कि भारतीय संस्कृति और भारत के नागरिक जीवन को भी एक नई दिशा दी। कई धर्मों, जातियों, कर्मों के कवियों द्वारा इस समय का साहित्य लिखा गया। कबीर, तुकाराम, नामदेव, रैदास, आखो, दादू, रहीम, रसखान, मीरा, अक्का महादेवी आदि बहुभाषिक तो थे ही, इसके अलावा ये सब के सब विभिन्न जातियों और संप्रदायों के थे। बुनकर,

दर्जी, सोनार, चर्मकार, धोबी, शिकारी आदि कई वर्गों से आए ये लोग एक तरह से पंडितवाद और पुराणवाद की वैचारिक पृष्ठभूमि के निषेध के साथ आगे बढ़े। जाहिर है कि एक समन्वित भारत और समग्र मानवीय अवधारणा के साथ इन सबकी सांस्कृतिक दृष्टि आगे बढ़ रही थी। ध्यातव्य है कि इसी दौर में रामायण और महाभारत का अनुवाद अथवा पुनर्सृजन विभिन्न आधुनिक भारतीय भाषाओं में हुआ, जिनमें से अधिकांश आज अपनी-अपनी भाषा का मौलिक और आधार ग्रंथ माना जाता है।

गरज कि अनुवाद के जरिए जब कोई साहित्य किसी दूसरी भाषा में जाता है तो स्रोत भाषा का पाठ, लक्ष्य भाषा में अपने साथ पूरे जनपद के अतीत, परंपरा, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, आहार-व्यवहार, संबंध-सरोकार, बिंब-प्रतीक, मिथक-यथार्थ, शब्द-संस्कार, पात्रों के वर्ग-संघर्ष, जीवन-संघर्ष, तमाम बातों के साथ ही जाता है। एक बात यह भी है कि अनुवाद के जरिए जब कोई संस्कृति किसी दूसरे परिवेश में पहुँचती है तो वहाँ वह वैसी की वैसी नहीं रह जाती। या तो वह वहाँ की मौजूदा संस्कृति में प्रविष्ट होकर अपने लिए जगह बना लेती है, या वहाँ के नागरिक जीवन की सुविधा के मद्देनजर अपने को पुनर्गठित कर लेती है, या फिर वहाँ की संस्कृति के साथ मिलकर एक अलग ही संस्कृति निर्मित कर देती है। यह स्थिति वाचिक-परंपरा के पाठ के साथ तो कई बार हो जाती है। कभी-कभी सामान्य पाठ के साथ भी होता है। भक्ति-आंदोलन की कई रचनाएँ इसके उदाहरण हो सकते हैं। प्रचार-प्रसार के दौरान नेपाल, चीन, तिब्बत, खोतानी, ब्रह्मदेश, इंडोनेशिया, मध्य जावा, बाली द्वीप, मलय द्वीप, सिंहल देश, अरब-ईरान, यूरोप आदि में रामकथा का स्वरूप परिवर्तन में यही पद्धति कारगर रही होगी। यदि विश्व फलक पर लोक-साहित्य का अनुशीलन करें तो यह बात और साफ-साफ दिखेगी। कई अफ्रीकी लोक-कथाएँ ऐसी हैं, जो बिहार में या भारत के कई भूखंडों में अपने स्थूल रूप में एक-सी हैं, पर हर भाषा में जाकर वह वहाँ के नागरिक जीवन के साथ रचने-बसने के क्रम में स्थानीय आवरण और वेशभूषा की हो गई हैं। ठीक यही बात भारत के भीतर ही विविध राज्यों-क्षेत्रों की लोक-कथाओं के बारे में भी कही जा सकती है। यहाँ तक कि रामायण, महाभारत तक का जो अनुवाद विविध भाषाओं में हुआ है, उसमें भी स्थानीय व्यवहार होते गए हैं। और, जब एक ही देश में सांस्कृतिक संचरण का यह वैविध्य हो जाए तो फिर विदेशी भाषाओं के साथ क्यों न हो।

शोधपरक तथ्य है कि प्राचीनकाल में रामकथा के संपोषकों ने भारत के पड़ोसी देशों में जहाँ-जहाँ अपना व्यापारिक अथवा औपनिवेशिक संबंध बनाया, वहाँ-वहाँ अपने धर्म-प्रचारक भेजकर रामकथा का प्रचार-प्रसार किया। उत्तर में नेपाल, तिब्बत, चीन और खोतान, पूरब में ब्रह्मदेश, स्याम और चीन, दक्षिण पूर्व में मलय, यव द्वीप, बाली और लंबक आदि के

जनजीवन में रामकथा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह दीगर बात है कि उन स्थानों की रामकथा अब वाल्मीकि अथवा तुलसी की रामकथा जैसी नहीं रहीं। वैसे रहे भी क्यों। जब वाल्मीकि की रामकथा से तुलसी की रामकथा भिन्न है, और तुलसी की रामकथा से कृतिवास और कंबन की रामकथा भिन्न है तो फिर चीन की रामकथा भारत से भिन्न क्यों न हो। अनुवाद और इतिहास की सरणियाँ पार करने के बाद तो इतनी तब्दीलियाँ आ जाती हैं कि कभी-कभी सच, झूठ जैसा लगने लगता है। ईस्वी सन् के प्रारंभ के समय कुषाण वंश का राज्य काशी से खोतान तक फैला हुआ था। दूसरी शताब्दी के आते-आते बौद्ध धर्म, बौद्ध साहित्य और बौद्ध संस्कृति का प्रचार मध्य एशिया से चीन तक सब जगह होने लगा था। आगे के वर्षों में नेपाल, और तिब्बत होते हुए भारत के साथ चीन का संबंध और बढ़ा। तीसरी सदी के आते-आते बौद्ध साहित्य 'अनामक जातकम' का चीनी अनुवाद हुआ जिसमें रामकथा के सूत्र मिलते हैं। आठवीं-नौवीं शताब्दी की उपलब्ध तिब्बती रामायण, नौंवी शताब्दी की खोतानी रामायण से रामकथा के सूत्र मिलते हैं। शोध सूत्रों के आधार पर इसी तरह ब्रह्मदेश, इंडोनेशिया, मध्य जावा, बाली द्वीप, सिंहल देश, अरब, ईरान, यूरोप आदि में रामकथा की मौजूदगी और लोकप्रियता की जानकारी परशुराम चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति विश्व मंच पर' में विस्तार से दी है। इसी तरह उन्होंने बौद्ध धर्म और जैन धर्म के प्रचार-प्रसार की सूचनाएँ भी एकत्र की हैं और उनके प्रचार-प्रसार एवं लोकप्रियताओं की व्याख्या दी है। तय है कि पहली-दूसरी शताब्दी के आते-आते बौद्ध-धर्म का प्रचार-प्रसार और तेजी पकड़ चुका था, इसलिए वाजिब ही है कि पहले से संचरित रामकथाओं पर पीछे से आई हुई जातक कथाओं की विषयवस्तु आदि का प्रभाव पड़ा हो, या फिर वहीं के कल्पनाशील नागरिकों का रचना-कौशल रहा हो, जिस कारण उन कथाओं में तब्दीली आती गई हो।

प्राक् उपनिवेशकालीन, उपनिवेशकालीन और उत्तर उपनिवेशकालीन भारतीय साहित्य के मद्देनजर भारतीय बौद्धिक मानस का अनुशीलन विस्तृत फलक पर करें तब भी सांस्कृतिक संचरण का विस्तार बड़ी स्पष्टता से दिखता है। वैसे अनुवाद कार्य के उद्देश्य के संबंध में प्राच्य-पाश्चात्य पुराने नजरियों की तुलना करने पर रोचक संदर्भ सामने आता है। इस संदर्भ में स्वर्ग-बहिष्कृति की बाइबिल की कथा का उल्लेख करते हुए जे. हिल्स मिलर ने अनुवाद को 'सतत निर्वासन की भटकती अवस्था' कहा है। भारतीय चिंतकों के मन में ऐसी चिंता कतई, कभी नहीं हुई। कहें कि इस अवधारणा की ओर कभी नजर ही नहीं गई। बहुभाषिकता, बहुसांस्कृतिकता और अनुवाद की समझ भारत के आम नागरिकों के लिए सदा से सहचरी बनी हुई है। अनुकथन, अनुवचन, व्याख्या, विश्लेषण, अन्वय, अर्थ, सार, टीका, भावानुवाद, अनुवाद...कई पदबंध यहाँ की मान्यताओं में बसे रहे हैं। भारत में सबसे बड़ी बात यह दिखती रही है कि लोक-कंठों में बसे गीतों, कथाओं, गाथाओं, संदर्भों का संचार जहाँ-जहाँ हुआ, वहाँ-वहाँ

एक नए रूप की संरचना भी हुई। इन अर्थों में हमें सहज स्वीकार्य होना चाहिए कि दो संस्कृतियों, दो पाठों की भाषिक समझ के अंतर के कारण ही अनुवाद की जरूरत होती है, अर्थात अनुवाद दो संस्कृतियों, दो पाठों के भाषिक, व्यावहारिक अंतर की मूक स्वीकृति है और सांस्कृतिक सख्य के विस्तारण का प्रमाण है।

स्वाधीनता पूर्व के समय की स्थितियों को देखने से तो साफ-साफ तय होता है कि फिरंगियों ने भारतीय मनीषा के धार्मिक, पौराणिक, सांस्कृतिक ग्रंथों का अनुवाद करवाया ही इसलिए था कि वे यहाँ की संस्कृति को समझ सकें। 'पॉलिटिक्स ऑफ ट्रांसलेशन' का यह बहुत शानदार नमूना है कि किसी भी क्षेत्र विशेष के सामान्य नागरिक की सांस्कृतिक अस्मिता को जाने बगैर वहाँ शासन कर पाना असंभव है। किसी व्यक्ति के साथ महीनों रहकर आप केवल उस व्यक्ति के उतने दिनों के व्यवहार को जान सकते हैं, लेकिन उस क्षेत्र की संस्कृति को जान लें तो वहाँ की पूरी जनता को जान जाएँगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतीय विद्वान सदा से कर्मों में विश्वास करते रहे हैं, कर्मों को परिभाषित और महिमामंडित करने में नहीं। यहाँ अनुवाद कार्य हो अथवा मूल वाचन-लेखन, उन्हें सिर्फ संप्रेषण या अभिव्यक्ति समझा गया। शायद यही कारण हो कि प्रस्तुत कथन के पुनर्कथन में यहाँ पर्याप्त छूट ली जाती रही है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्येतिहास पर नजर डालें तो साफ दिखता है कि कई नई विधाओं का विकास-विस्तार पौराणिक सामग्रियों के पुनकर्थन से ही हुआ है। अकेले रामायण की बात करें तो हमारे यहाँ तुलसीदास, कृतिवास, कंबन, एचुत्तायन आदि द्वारा रचित रामायण अपनी भाषाओं के मूल ग्रंथ माने जाते हैं। तथ्य है कि फ्रांस के महान अनुवाद चिंतक एतीन दोलेत को अनुवाद में छूट लेने की वजह से फाँसी चढ़ा दिया गया था, वैसी परंपरा भारत में अपनाई गई होती, तो भक्तिकाल के सारे रचनाकार फाँसी चढ़ गए होते। संत ज्ञानेश्वर के अर्जुन अपने उपदेशक कृष्ण से कहते हैं कि तुम्हारी बात देववाणी में मेरी समझ में नहीं आती, तुम शुद्ध मराठी में अपनी बात समझाओ। 'गुरु ग्रंथ साहिब' में न जाने कितने संतों की बानियाँ संकलित हैं। महाकवि विद्यापति ने जाने कितने संदर्भों को अवहट्ट और मैथिली में तराशा, चंदवरदायी ने पृथ्वीराज रासो में अपने नायक के लिए अपने राष्ट्रीय संदर्भ का उल्लेख किया।

अनुवाद के जरिए सांस्कृतिक संचरण की इस विराट शृंखला को ध्यान में रखते हुए हमें थोड़ा और पीछे जाकर देखने की आवश्यकता पड़ेगी, जब बौद्ध साहित्य का प्रचार-प्रसार शुरू हुआ। सर्वास्तिवादी और थेरवादी परंपरा के प्रचार-प्रसार के दौर में चीनी सहित कई भाषाओं में बुद्ध वचनों का अनुवाद हुआ, और कई ग्रंथ वहाँ से पुनः अनूदित होकर, वहाँ की संस्कृतियों के संस्पर्श के साथ भारत आ गए। भारतीय संदर्भ में अनुवाद कार्य के

दौरान इस छूट और सांस्कृतिक विस्तार का सदा स्वागत हुआ है। भारत का भाषा-शास्त्र और केंद्रीय विषय की प्रमाणिकता के नियंता लोग कभी इस चिंता में दुबले नहीं हुए कि हमारा मूल कहीं खो जाएगा, यहाँ सदा इन अभिकर्मों को सांस्कृतिक अस्मिता के संधान और अनुवाद कार्य की अनिवार्य आवश्यकता के रूप में देखा गया।

आज इस बात को लेकर सावधान होने की जरूरत है। इस क्रम में इस चिंता की भी कोई खास आवश्यकता नहीं कि स्वातंत्र्योत्तर काल के ब्रिटिशों ने अपनी सत्ता के अहंकार में हमें इतिहासहीन घोषित करने की असफल चेष्टा की। इतिहास गवाह है कि क्रूर और बर्बर शासक अपने शासितों को इतिहासहीन, छिन्नमूल, असभ्य, कुसंस्कृत कहता है। अंग्रेजों ने भी उसे दुहराया। अपने फतबे से उन्होंने भारत की साहित्यिक-सांस्कृतिक भव्यता को अमान्य किया, उसे पिछड़ा और अर्थहीन बताया। ब्रिटिश शासनकाल में अपनी भौतिक सुविधाओं के लालच में आए कुछ भारतीय भी तो अंग्रेजीदाँ हो ही गए थे। वे उन्हीं की रुचियों, मंतव्यों के अनुरक्षक, संपोषक हो गए थे। वैसे ही भारतीय बुद्धिवादियों के साथ मिलकर अंग्रेजों ने अनुवाद कार्य की पहरेदारी की, और अपनी रुचि के हिसाब से ऐसे अनुवाद कार्य करवाए और उसे प्रोत्साहन दिया, पुरस्कृत किया, जिनमें भारतीय साहित्य और संस्कृति की गरिमा आहत होती रही। 'द एरेंजमेंट्स ऑफ एन एलाइंस' शीर्षक अपने लेख में सूजी थारू ने और अपने विश्लेषण में रोमिला थापर ने इन प्रसंगों का विस्तार से उल्लेख किया है।

हमें इन चिंताओं में सिर खपाने के बजाय अपनी शक्ति का सकारात्मक उपयोग करना है। यह तो उनके लिए ही शर्म की बात होनी चाहिए कि जिस अनुवाद को उनके चिंतक, 'निर्वासन की भटकती अवस्था' कहा करते थे, उसी अनुवाद ने उन्हें भारतीय संस्कृति को समझने का हुनर और सुविधा दी और फिर उसी अनुवाद-कार्य में लोमड़ीगिरी करने लगे। हमें यह देखना है कि इन तमाम विडंबनाओं के बावजूद, इतने-इतने झंझावातों को सहते रहने के बावजूद, भारतीय साहित्य और संस्कृति का वैविध्य और उसकी गरिमा निरंतर ऊँचाई पाती गई है। और, ऊँचाई देने वाला यह घटक है अनुवाद-कार्य; जो स्वयं अपनी संपूर्ण निष्ठा और उज्ज्वलता के साथ आगे बढ़ा जा रहा है।

प्राक् उपनिवेशकालीन सृजन और अनुवाद की उदारता और उपनिवेशकालीन वैचारिक संकीर्णता के संघर्ष के परिणामस्वरूप भी हमारे साहित्य और संस्कृति को कम लाभ नहीं हुआ। इसका श्रेय हमारे यहाँ के बुद्धिजीवियों, रचनाकारों और अनुवादकर्मियों की सकारात्मक सोच को जाता है कि भाषिक और सांस्कृतिक तौर पर पूर्णतया और स्पष्टतया इतनी भिन्नता बने रहने के बावजूद दुनिया के सबसे बड़े गणतंत्रात्मक राष्ट्र भारत के नागरिकों के मन में अपनी सांस्कृतिक विविधता के प्रति सम्मान भाव बना हुआ है। फणीश्वरनाथ रेणु के

'मैला आँचल', यू.आर. अनंतमूर्ति के 'संस्कार', मोहन राकेश के 'अंधेरे बंद कमरे', तकषी शिवशंकर पिल्लै के 'क्वैर', श्रीलाल शुक्ल के 'रागदरबारी', भालचंद्र नेमाडे के 'कोसाला', कृष्णा सोबती के 'जिंदगीनामा', राजकमल चौधरी के 'मछली मरी हुई', ललित के 'पृथ्वीपुत्र', गोपीनाथ मोहंती के 'परजा', सोहन सिंह शीतल के 'तूताँ वाला खूँह', महाश्वेता देवी के 'अग्निगर्भ' जैसे उपन्यासों और भारतीय साहित्य के अनगिनत कथाकारों, नाटककारों, कवि-चिंतकों के लेखन में उत्तर उपनिवेशकालीन जिन सांस्कृतिक विरासत की महक और उन्मुक्तता हम सब देख रहे हैं, उसका असली संस्पर्श इतने बड़े बहुभाषी देश के नागरिकों को अनुवाद के सहारे ही मिल रहा है। अधिक पीछे न जाकर सन् 1857 से सन् 1947 तक के नब्बे वर्षों के अनूदित साहित्य पर भी विचार करें, तो बातें बहुत सफाई से सामने आती हैं। या फिर भारतीय साहित्य के केवल स्वातंत्र्योत्तरकालीन अनुवाद में बंकिम, शरत, रवींद्र, प्रेमचंद, निराला, नागार्जुन, महाश्वेता, वैकम मुहम्मद बसीर, शिवराम कारंत, यू. आर. अनंतमूर्ति, केसव रेड्डी, पन्नालाल पटेल, सुमत्तिरम, भालचंद्र नेमाडे, कर्तार सिंह दुग्गल आदि की रचनाओं के विभिन्न भारतीय भाषाओं में हुए अनुवाद को देखकर, राष्ट्रीय फलक पर सांस्कृतिक सौहर्द की जितनी स्पष्ट छवि बनती है, उसका सारा श्रेय अनुवाद कार्य को ही जाता है। और, हर जनपद की संस्कृतियाँ एक-दूसरे को निरंतर सम्पुष्ट करती जा रही हैं। असम अथवा बिहार के नागरिक 'ओणम' की महत्ता; केरल, कर्नाटक के नागरिक 'बिहू' और 'छठ' की महत्ता को समझने लगे हैं; तो इसका अधिकांश श्रेय अनुवाद को ही जाता है।

उल्लेखनीय है कि हर जनपद की भाषा अपनी सांस्कृतिक अस्मिता के साथ ही महत्त्वपूर्ण होती है। और हर जनपद की सांस्कृतिक धारा मूल पाठ में कई स्तरों तक रची-बसी होती है। इस पूरी प्रक्रिया में जब स्रोत भाषा का संदेश लक्ष्य भाषा में पहुँचता है, तब अनुवादक के लाख प्रयास के बावजूद उसकी मौलिकता अपने मूल संदर्भ से गहरे जुड़ाव के कारण बची ही रहती है। भाषांतरण की इसी प्रक्रिया में एक जनपद की संस्कृति का दूसरी भाषा की संस्कृति में कायांतरण होता है। भारत जैसे बहुसांस्कृतिक, बहुभाषिक देश में दो भाषा-भाषी क्षेत्रों की संस्कृतियों का संवर्द्धन और संचरण इसी रास्ते होता है। इन अर्थों में अनुवाद के जरिए न केवल एक भाषा का संदेश दूसरी भाषा के पाठक तक पहुँचता है, बल्कि सबसे पहले दो संस्कृतियों का आपस में परिचय होता है, फिर संघर्ष होता है, और, उसके बाद फिर विकास होता है। यह कहने में काई हिचक नहीं होनी चाहिए कि अनुवाद संस्कृतियों और विचारों की सुदूर यात्रा की सरणि भी है, और इस तरह राष्ट्रीय एकीकरण में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

❑

डॉ. हरीश कुमार सेठी

भाषिक सेतु बंधन का इंजीनियर : अनुवादक

भाषायी वैविध्य एक चिर यथार्थ है। विश्व में अनेकानेक भाषाएँ व्यवहार में लाई जाती हैं। सभी भाषाओं में एक-दूसरे की तुलना में एक विशेष प्रकार की दूरी होती है। इस तरह भाषाएँ दायरे भी निर्मित करती हैं। ये दायरे अन्य भाषा-भषियों के लिए दूरियाँ बढ़ाते हैं, खाइयाँ बनाते हैं। ऐसे में दो भाषाओं के बीच व्याप्त दूरी को पाटने के लिए सेतु-निर्माण की जरूरत होती है। किंतु यह सेतु अपने आप नहीं बन पाता। इसे बनाने का दायित्व किसी न किसी व्यक्ति को निभाना पड़ता है। जो व्यक्ति इस कार्य को संपन्न करता है उसे 'अनुवादक' कहा जाता है। अनुवादक अपने अथक प्रयासों से अनुवाद रूपी सेतु के जरिए भाषाओं के बीच व्याप्त दूरियों की खाइयों को पाटने का पुनीत प्रयास करता है। इसलिए अनुवादक दो भाषाओं के बीच सेतु-बंधन का कार्य करने वाला साधक-इंजीनियर होता है। वह दो भाषा-भषियों के बीच भावात्मक एकता का दीप प्रज्वलित करता है। अनुवादक के बिना अनुवाद के बारे में किंचित भी सोचा नहीं जा सकता।

अनुवाद-कर्म एवं अनुवादक पर भले ही कई प्रकार के आक्षेप लगाए जाते रहे हों, किंतु इनका महत्व-प्रासंगिकता निर्विवाद है। मनुष्य की अलग-अलग भाषाओं ने उनमें आपसी संपर्क के लिए भाषांतरण अथवा अनुवाद की आवश्यकता को पैदा किया। भाषा के लिखित रूप के विकास ने अनुवाद के लिखित रूप को जन्म दिया और मानव-सभ्यता के विकास के साथ-साथ संप्रेषण व्यापार में अनुवाद पर आश्रय बढ़ता गया। और आज अनुवाद केंद्रीय महत्व की चीज बन चुका है, व्यावसायिक-सामाजिक आवश्यकता बन चुका है। पुराने समय में लोग प्रायः वैयक्तिक रुचि के आधार धार्मिक ग्रंथों आदि का अनुवाद करते थे। लेकिन आधुनिक युग में अनुवाद कार्य सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक आवश्यकता पर आधारित हो चुका है, व्यक्ति-परिधि से निकलकर समष्टि की परिधि

में आ गया है। आज अनुवाद कार्य एक व्यवसाय का रूप धारण कर चुका है, रोजगार का माध्यम बन चुका है। रोजगार के इस क्षेत्र में योग्य, कुशल और अनुभवी अनुवादकों की भारी माँग है।

आज के सूचना क्रांति के दौर में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनुवादक का योगदान अपरिहार्य है। जनसंचार माध्यमों, खेल, वित्त-वणिज्य एवं बैंकिंग, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, कंप्यूटर, शिक्षा, मानविकी, पर्यावरण, पर्यटन, राजनीति, ज्योतिष, इतिहास, दर्शन, समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, कंप्यूटर विज्ञान आदि ज्ञान-विज्ञान एवं जीवन-व्यवहार के समस्त क्षेत्रों-उपक्षेत्रों इनमें अनुवाद पूरी तरह से प्रवेश कर चुका है। इन क्षेत्रों में अनुवाद के महत्व ने इसका व्यापक विस्तार करके इसकी प्राण-प्रतिष्ठा की है। वास्तविकता यह है कि विश्व के किसी भी देश-समाज, भाषा और व्यक्ति के लिए शेष विश्व की समस्त उपलब्धियों से जुड़ने के लिए अनुवाद से बेहतर विकल्प कोई और नहीं है। ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में वैश्विक पटल पर हो रही प्रगति और विकास एवं उपलब्धियों से साक्षात् के लिए मनुष्य को अनुवाद पर निर्भर रहना पड़ता है। अधुनातन तकनीकी संसाधनों और अनुसंधानों से परिचित होने के लिए अनुवाद न केवल प्रमुख बल्कि सर्वसुलभ माध्यम भी है। आज अनुवाद मानव-समाज की न केवल अनिवार्य आवश्यकता है बल्कि कल के स्वाभविक विकास का प्रमुख साधन-उपकरण भी है। इसलिए आज अनुवाद के साथ-साथ अनुवादक का महत्व भी बढ़ रहा है।

अपने श्रम-साध्य परिश्रम से अनुवादक एक (स्रोत) भाषा-परिवेश के ज्ञान-भंडार को दूसरी (लक्ष्य) भाषा-परिवेश के लोगों के समक्ष प्रस्तुत करके ज्ञान के अनगिनत द्वार खोलता है। सूचना प्रौद्योगिकी के वर्तमान युग में समूचा विश्व एक गाँव बन रहा है और ज्ञान-रुचि, श्रीसमृद्धि और ऐक्य के संगम-स्थल का रूप धारण कर रहा है। इस अद्‌भुत संगम-स्थल में अनुवाद संवाद की भाषा बन गया है और अनुवादक अपनी श्रम-साधना से इस भाषा का रचनात्मक अनुप्रयोग करने वाला साधक। ऐसे में इतालवी लेखक रीनातोपोगी के अनुवादकों के संबंध में ये विचार सार्थक-सटीक प्रतीत होते हैं कि अनुवादक विभिन्न भाषाओं के अक्षरों रूपी गणराज्य (अर्थात 'साहित्य के लोकतंत्र') के नागरिकों में से सर्वाधिक 'विश्व-बंधु' (विश्व-व्यापी) हैं जिनकी अनुपस्थिति किसी भी साहित्य-परंपरा को सीमित और उकताने वाली बना सकती है – 'Translators are after all the most cosmpolitan among the citizens of the Republic of Letters; their absence from the scene or their presence in a too limited number, may mean that the literary tradition will rest all too easily within the Chinese wall it has erected around itself. By denying itself a look beyond that wall, a literature is bound to die of slow exhaustion, or, as Goethe Said, of self-boredom.'[1] इसलिए साहित्य रूपी भवन में अनुवाद के अभिनव द्वार हमेशा खुले रहने चाहिए। इससे

प्रवेश करने वाले अनुवादकों के परिश्रम की सराहना की जानी चाहिए क्योंकि उनके सत्प्रयास वास्तव में अनेकानेक नए द्वार खोलने की संभावना लिए हुए होते हैं। जे. हिल्स मिलर ने अनुवादक को 'चिरंतन प्रवास में चिर यायावर' की संज्ञा प्रदान की है।[2] वहीं, डॉ. गार्गी गुप्त ने अनुवादक को विश्व-बंधुत्व का संदेश देने वाला और पाठकों का ज्ञानवर्धन करने वाला बताते हुए लिखा है कि अनुवादक 'एक नन्हा परंतु जीवित पक्षी है, जो दूसरी भाषाओं के खुले एवं विस्तृत आसमान में मुक्त उड़ान भरता रहता है और विश्व-बंधुत्व का संदेश देता हुआ पाठकों का ज्ञानवर्धन करता है।'[3]

आज अनुवाद कार्य को कमोबेश मौलिक सृजन के समकक्ष महत्व दिया जाता है। आज से कुछ समय पहले तक अनुवाद को दोयम दर्जे का स्थान दिया जाता था, लेकिन आज अनुवाद स्वयं को उपयोगी-उपादेय सिद्ध कर चुका है। परिणामस्वरूप अनुवाद की बहु-आयामी उपादेयता ने जातीय-राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में अपनी अनिवार्यता सिद्ध की है। अनुवाद के जरिए बहुभाषी राष्ट्र की एकसूत्रता को एक सार्थक दिशा मिलती है और बहु-आयामी सांस्कृतिक वैशिष्ट्य का आदर-सम्मान, इससे समन्वित सामासिक संस्कृति में समन्वयात्मक चेतना का पल्लवन-पुष्पन होता है। इससे अंतरराष्ट्रीय दृष्टि और रुचि का व्यापक समाहार होता है। इसीलिए कहा जाता है कि अनुवादक एक फूल के पराग को दूसरे तक पहुँचाकर संस्कृति एवं साहित्य का पुष्पन-पल्लवन करना है। अनुवाद से ही तुलनात्मक अध्ययन को व्यापक परिप्रेक्ष्य प्राप्त होता है। अनुवाद राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय साहित्य के अध्ययन-अध्यापन एवं अनुसंधान की नई दिशाओं के अवगाहन का आधार है। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र के अतिरिक्त व्यवसाय, प्रशासन, शिक्षा, जनसंचार, पर्यटन आदि जीवन-व्यवहार के विविध क्षेत्रों में तो इसकी बहुकोणीय उपादेयता है ही, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने उत्पादों को विश्व-बाजार में खपाने के लिए भाषाओं की बाधाएँ अनुवाद का सहारा लेकर ही लांघ पाती हैं। विभिन्न संदर्भों में और क्षेत्रों में अनुवाद की यह अपरिहार्य आवश्यकता आज के युग को 'अनुवाद का युग' बनाती है। अनुवाद की यह प्रासंगिकता ही वास्तव में अनुवादक की महत्व-प्रतिष्ठा करती है, उसके तथाकथित दोयम कार्य को पुनीत-पावन कार्य बनाती है। विश्व में विद्यमान भाषा-भेदों की वजह से विभिन्न देशों-भाषाओं की साहित्यिक संपदा से किसी भी अन्य भाषा-भाषी व्यक्ति द्वारा लाभान्वित हो पाना ही संभव नहीं हो पाता, यदि अनुवादकों ने उस भाषाई दूरी को समाप्त करके इतर भाषा-भाषियों से जोड़ने का पुनीत दायित्व न निभाया होता।

अनुवादक ही वह 'साहित्यिक अनुकरणकर्ता' है जो इतर ज्ञान-विज्ञान, कला और सौंदर्य-भंडार को दूसरी भाषा में लाने का महान एवं आदर्श कार्य करता है। डॉ. कैलाश चंद्र भटिया के शब्दों में कहें तो ''अनुवादक को मूल कृति की सर्जन-प्रक्रियाओं से गुजरते हुए उसके सत्य और संगीत को जिंदा मोती की तरह एक भाषा-सीप से निकालकर

दूसरी भाषा-सीप में कुछ इस तरह रखना पड़ता है कि वह जीवित बना रहे और उसकी ऊपरी चमक तथा आंतरिक दीप्ति वैसी बनी रहे जैसी पहले थी।''[4] वास्तव में अनुवादक स्रोत भाषा-रूपी फूल के पराग-कणों को लक्ष्य भाषा रूपी दूसरे फूल तक पहुँचाकर साहित्य और संस्कृति का पुष्पन-पल्लवन करता है। उसके इस महत् कार्य के लिए प्रत्येक भाषा-समाज और संस्कृति उसके ऋणी कहे जा सकते हैं। उसका यह अनुकरण-कर्म अपने कार्य-क्षेत्र में रहते हुए परिणत होता है। वह साहित्य-सर्जक की भाँति कृति को मौलिक कृति की आभा से मंडित करते हुए, उसमें ताजगी लाते हुए उसे अपनी भाषा में एक नया रूप देने की कोशिश करता है। आदर्श अनुवादक से इसी प्रकार के अनुवाद की अपेक्षा की जाती है कि अनूदित रचना को पढ़ने पर पाठक को वैसा ही रसास्वादन हो जैसा कि मूल कृति को पढ़ने से मिलता है। यानी वह अनूदित कृति प्रतीत न हो मूल-सा आनंद दे। आदर्श अनुवादक के संबंध में गोगोल का कहना है कि ''आदर्श अनुवादक उस बेदाग काँच की तरह होता है जिसके पार दर्शक हर चीज को साफ-साफ, ज्यों का त्यों, देख सके और इसके साथ ही उसके अस्तित्व से भी अभिज्ञ रहे।''[5] इस संदर्भ में डॉ. भोलानाथ तिवारी के विचार भी ध्यान देने योग्य हैं कि ''अनुवादक का प्रयास यह होता है कि मूल को पढ़ या सुनकर लक्ष्य भाषा भी ठीक वही ग्रहण करे। आदर्श अनुवाद का सूत्रवाक्य है – समवेततः यथासाध्य न छोड़ो, न जोड़ो। अर्थात अनुवादक यथासाध्य न तो मूल का कुछ अर्थतः या अभिव्यक्तितः छोड़े और न ही अपनी ओर से कुछ जोड़े। आदर्श अनुवादक सिरिंज की वह सूई है जो सिरिंज की दवा को ज्यों का त्यों मरीज के शरीर में पहुँचा देती है।''[6]

हालाँकि अनुवाद के क्षेत्र में भ्रष्ट अनुवाद करने वाले भी नजर आ जाते हैं। लेकिन केवल उनका ही कर्म अनुवाद को दोयम एवं अनुवादक को रचयिता के स्थान पर दूसरी भाषा में शाब्दिक प्रस्तुत करने वाला शब्द-शिल्पी मात्र नहीं बना सकता। अनुवादक दूसरों की बनाई धुनों को अपना स्वर देने वाला प्राणी मात्र नहीं है। ऐसे अनुवादकों को आदर्श अनुवादक नहीं कहा जा सकता। लेकिन यही स्थिति मौलिक सृजन में भी कदाचित व्याप्त है। यदि इस कारण मौलिक सृजन दोयम नहीं है तो अनुवाद को भी क्यों दोयम दर्जे का कार्य माना जाए। साहित्य के क्षेत्र में इस प्रकार के तथाकथित लेखक आदर्श नहीं माने जाते तो ऐसे तथाकथित अनुवादक भी आदर्श नहीं हो सकते।

अनुवादक दो भाषाओं, उनके साहित्य-संस्कृति एवं सामाजिक भावबोध को अनुवाद के द्वारा समान धरातल पर प्रस्तुत करने संबंधी जटिल दायित्व को निभाता है। अनुवादक मूल रचना को उस पाठक वर्ग तक पहुँचाने का दायित्व वहन करता है, जो मूल भाषा का जानकार नहीं है। वह अपने इस दायित्व को ईमानदारी से निभाने का भरसक प्रयास करता है। इस साधना-साध्य कर्म को करने वाले अनुवादक का यह दायित्व तलवार

की धार पर चलने की भाँति है। उसका दायित्व दोहरा होता है। इस दोहरे दायित्व को मूल के प्रति निष्ठावान होने और मूल लेखक के भाव एवं शैली को यथासाध्य प्रतिसाधित करने के संदर्भ में देखा जा सकता है। मूल लेखक के पीछे चलना अनुवादक की नियति है और मूल आशय की ओर बढ़ना उसका कर्म। वह मूल के कथ्य को पकड़कर लेखक का कार्य करते हुए उसे यथावत दूसरी भाषा का जामा पहनाता है। मूल के प्रति निष्ठावान रहकर वह श्रम-साध्य कार्य करके भी मूल लेखक को श्रेय प्रदान करके वह साहित्य सर्जक के लिए साधन का काम करता है। यह उसके कार्य की प्रकृति की विडंबना भले ही हो, किंतु उसे अपने कार्य की महत्ता का बोध ही उसे इस कर्म में बने रहने की प्रेरणा देता है। अपने कार्य-क्षेत्र की सीमाओं के भीतर उसे साहित्य-सर्जक की भाँति रचना को लक्ष्य भाषा में नए रूप में प्रस्तुत करना होता है। इसके बिना अच्छा अनुवाद संभव नहीं। सिद्धांततः उसे मूलवत अनुवाद करना होता है। इसके लिए उसका स्रोत और लक्ष्य भाषा पर अच्छा अधिकार होना अत्यंत आवश्यक है। यानी अनुवादक को दोनों भाषाओं की प्रकृति और प्रवृत्ति का ज्ञान जरूरी है। स्रोत भाषा के अपूर्ण ज्ञान से कथ्य को समझने और लक्ष्य भाषा के अपूर्ण ज्ञान से कथ्य अथवा भाव की आत्मा के नष्ट होने की आशंका होती है। यहाँ अगर मौलिक लेखन करने वाले के संदर्भ में तुलना करें तो यह स्वीकार करना पड़ता है कि लेखक केवल एक भाषा का अधिकारी विद्वान हो सकता है, लेकिन अनुवादक का दोनों भाषाओं पर आधिकारिक ज्ञान आवश्यक है। इसलिए कहा जाता है कि लेखक होना सरल है जबकि अनुवादक होना कठिन।

वास्तव में अनुवाद, एक भाषा के कथ्य एवं उसके भाषिक सौंदर्य को भली प्रकार से समझकर दूसरी भाषा में प्रस्तुत करने से संबंधित कार्य है। एक भाषा से दूसरी भाषा में अंतरित की जाने वाली विषय-वस्तु साहित्य, ज्ञान-विज्ञान अथवा कला-कौशल आदि में से किसी भी ज्ञान-क्षेत्र से संबद्ध हो सकती है। इसलिए अनुवादक को विषय-विशेष संबंधी जानकारी होना भी जरूरी है। अर्थात अनूद्य मूल सामग्री से संबंधित विषय-विशेष में उसकी अंतरंग पैठ आवश्यक है। इसके बिना वह स्रोत भाषा की सामग्री का लक्ष्य भाषा में सही अनुवाद नहीं कर सकता। लेकिन यह कार्य लक्ष्य भाषा में शब्दांतर करते हुए अभिव्यक्ति करने से ही संपन्न नहीं हो जाता। अनुवाद में शब्दों के अर्थ के साथ-साथ उसमें निहित भाव-विचार अर्थात् कथन के आशय को भी सही तरीके से अभिव्यक्त करना होता है ताकि अनूदित पाठ अपनी गुणवत्ता में अनुवाद का आभास न दिलाकर मूल पाठ-सा प्रतीत हो। इस आधार पर देखा जाए तो अनुवादक को अनूद्य-सामग्री से संबंधित विषय का पर्याप्त ज्ञान, पाठ के शब्दों में निहित अर्थ एवं अभिव्यक्ति की पूरी तरह से समझ होनी आवश्यक है। कथन के आशय के समुचित बोध के लिए उससे संबद्ध संकल्पनाएँ भी अनुवादक को पूरी तरह से स्पष्ट होनी चाहिए। दूसरी ओर,

अनुवादक का अभिव्यक्ति पक्ष भी मजबूत होना अपेक्षित है क्योंकि उसके कार्य की कसौटी इस तथ्य में निहित है कि वह मूल कथ्य, उसमें निहित आशय एवं कथ्य के प्रभाव को यथासंभव सुरक्षित बनाए रखते हुए लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करे; वह अनुवाद न लगे, बल्कि मौलिक कृति की आभा वाला हो और उसमें एक ताजगी हो। अनुवाद अध्ययन की शब्दावली में इसे ही 'समतुल्य प्रस्तुतीकरण' कहा जाता है। फिट्ज्जेराल्ड ने तो इससे एक कदम आगे बढ़ने की बात कही है। उनका यह मानना है कि ''अनुवादक को अपनी रुचि के अनुवाद में मूल रचना की पुनर्रचना करनी चाहिए, क्योंकि मरे शेर से जीवित कुत्ता कहीं अच्छा होता है।''[7]

हालाँकि अनुवाद एवं अनुवादक की यह विडंबना है कि अनुवाद मूलवत नहीं हो सकता। इस कार्य में भाषा, देश-काल, सामाजिक-सांस्कृतिक तत्व जैसी कुछेक सीमाएँ मूल और अनुवाद के बीच अनेक बाधाएँ खड़ी करते हैं। अनुवादक इस प्रकार की अनेक समस्याओं से जूझते हुए मूल कृति को अपनी मेहनत से दूसरी भाषा में एक नए रूप में प्रस्तुत करता है। अनुवाद की डगर पर बढ़ते हुए उसके पाँव भले ही डगमगा जाएँ, लेकिन वह इसमें आगे बढ़ने से रुकता नहीं है। अनुवाद, मूल से बेहतर अथवा कम बेहतर भी नहीं होना चाहिए। इसलिए अनुवादक का 'अनुवाद की नैसर्गिक प्रतिभा' और 'समुचित रुचि' से संपन्न होना भी जरूरी होता है। भाषा की साधना-उपासना करते हुए अनुवादक अपनी लगन और कर्तव्यपरायणता से अनूदित पाठ में विश्वसनीयता और सौंदर्य का समन्वय करके विश्व-बंधुत्व की भावना को दृढ़ करता है।

संदर्भ

1. The Added Artificer (Renato Poggioli) in *On Translation* (Ed. Reuben A. Brower), Harvard University Press, Cambridge, 1959.
2. 'अनुवाद' पत्रिका, भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली, अंक 78, पृ. 8
3. 'अनुवाद' पत्रिका, भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली, अंक 78, संपादकीय, पृ. 6
4. अनुवाद कला : सिद्धांत और प्रयोग, डॉ. कैलाश चंद्र भाटिया, पृ. 10
5. सृजनात्मक साहित्य और अनुवाद, संपादक डॉ. सुरेश सिंहल और अन्य, पृ. 114
6. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ. 28
7. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ. 196 से उद्धृत

डॉ. सुरेश सिंहल

वाणिज्यिक अनुवाद

आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में निस्संदेह वाणिज्य संबंधी साहित्य के अनुवाद की माँग निरंतर बढ़ती जा रही है और इसलिए इसका महत्त्व निर्विवाद है। व्यापार में सफलता प्राप्त करने के लिए वाणिज्यिक संबंधी साहित्य का हिंदी में उपलब्ध होना आज अनिवार्य हो चला है। अतः इस प्रकार के साहित्य के अनुवाद का महत्त्व भी स्वतः ही बढ़ जाता है। इस संदर्भ में डॉ. अर्जुन चव्हाण का मत है कि आज प्रत्येक व्यक्ति और समाज के लिए ही नहीं, अपितु प्रत्येक राष्ट्र के लिए भी वाणिज्य-क्षेत्र का अपना विशेष महत्त्व है। वैयक्तिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय उन्नति के जितने भी मुख्य कारक हैं, वाणिज्य उनमें से एक है। वैज्ञानिक तथा औद्योगिक विकास के साथ-साथ अपनी पूर्ववर्ती शताब्दियों की तुलना में बीसवीं शताब्दी में वाणिज्य का विकास भी अपूर्व हुआ है। मनुष्य की मूलतः उद्योगशील वृत्ति, व्यापार के लिए अनुकूल माहौल की प्राप्ति और यातायात के साधनों की निर्मिति, ये वे कारण हैं जिन्होंने दुनिया के कोने-कोने में व्यापार के लिए अच्छा आधार प्रदान किया। अब व्यापार का क्षेत्र गली-मुहल्ले तक ही सीमित नहीं रह गया, वह तो राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर तक बढ़ गया है। अब अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापार विषयक नई नीति बनने तथा यातायात के साधन उपलब्ध होने के कारण हमारे यहाँ की कई चीजें दुनिया के बाजारों में आसानी से पहुँच रही हैं और वहाँ की चीजें हमारे यहाँ के बाजारों में आ रही हैं। सुविधाभोगी पीढ़ी में साधनों का जुगाड़ करने में इन दिनों मानो होड़-सी लगी है। आजकल नई-से-नई चीजों का निर्माण और बाजार में उनका आगमन, जनसंचार माध्यमों से दिया गया उसका विज्ञापन और उनको खरीदने के लिए मध्य वर्ग एवं निम्न वर्ग में बढ़ता हुआ आकर्षण का जाल अब दुनिया के कोने-कोने तक फैला हुआ नजर आता है। लेकिन दुनिया के सारे देशों की भाषा एक न होने के कारण आज वाणिज्य-क्षेत्र में अनुवाद को असाधारण महत्त्व प्राप्त हो गया

है। इसलिए अब वाणिज्यानुवाद की आवश्यकता उत्तरोत्तर बढ़ती हुई नजर आ रही है। संयुक्त राष्ट्र संघ, यूनेस्को, विश्व बैंक, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ जैसी अनेक अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय फिल्म महोत्सवों तथा ओलंपिक जैसे खेलों के कारण वाणिज्यानुवाद की माँग और आवश्यकता बढ़ती जा रही है।

वाणिज्यिक अनुवाद का स्वरूप

वाणिज्य साहित्य के हिंदी अनुवाद को पढ़ने वाले के हिंदी ज्ञान का स्तर एकसमान नहीं होता है। कुछ व्यक्तियों को हिंदी का बहुत ही कम ज्ञान होता है। कुछ को हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान होता है। कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं, जिन्हें हिंदी में प्रवीणता प्राप्त होती है। अतः पाठक वर्ग का ध्यान रखे बिना अनुवाद करने से प्रयोजन की सिद्धि नहीं होगी। विषयानुकूल अनुवाद होने पर भी यह तभी उपयोगी होगा जब पाठक उसे समझ सकें। अनुवादक को मूल विषय की राह से गुजरते हुए तथा अपने पाठक को समझाते हुए आगे बढ़ना चाहिए। इसके लिए अनुवादक में गहरी लगन, प्रीति एवं निष्ठा का होना बेहद जरूरी है।

आज अनुवाद को कला कहने के साथ-साथ विज्ञान भी माना जाने लगा है। ऐसा कोई भी साहित्यिक, वैज्ञानिक, तकनीकी एवं कार्यालयी क्षेत्र नहीं है, जहाँ अनुवाद ने दस्तक न दी हो। बैंकिंग उद्योग का काम हिंदी अनुवाद के माध्यम से धीरे-धीरे प्रारंभ हो चुका है। उसे स्थिर रूप लेने में समय लगेगा। इसके लिए पर्याप्त संदर्भ-साहित्य एवं मानक शब्दावली की आवश्यकता है। यहाँ यह कहना भी उचित होगा कि सही और सुंदर अनुवाद करने के लिए अंग्रेजी एवं हिंदी के शिक्षण तथा अनुवादकों के प्रशिक्षण की विस्तृत एवं व्यावहारिक योजनाओं को व्यापक स्तर पर बैंकों द्वारा लागू किया जाना चाहिए।

वाणिज्यिक क्षेत्र एवं बैंकों में अनुवाद की परंपरा और क्रमिक विकास को देखते हुए कहा जा सकता है कि बैंकों में अनुवाद का पदार्पण एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में हुआ। अतः अमर सिंह वधान के शब्दों में कहा जा सकता है कि ''बैंकों में अनुवाद की वर्तमान स्थिति 'अंग्रेजी से हिंदी' में अनुवाद करने की है। 'हिंदी से अंग्रेजी' में अनुवाद करने का पक्ष अपेक्षाकृत सीमित एवं दुर्बल है। इसका मुख्य कारण यह है कि अभी तक बैंकों के परिपत्र, प्रतिवेदन, प्रशिक्षण-सामग्री, सामान्य आदेश आदि का मूल मसौदा पहले अंग्रेजी में ही तैयार किया जाता है, और तब इसका हिंदी में अनुवाद किया जाता है। अब कुछ गिने-चुने बैंकों ने हिंदी में मूल मसौदों को तैयार करना शुरू कर दिया है; फिर आवश्यकता के अनुसार इनका अंग्रेजी में अनुवाद कर लिया जाता है। यदि बैंकिंग व्यवस्था का इंद्रजाल अनुवाद के पुनीत कार्य में जुटे राजभाषा अधिकारियों एवं अनुवादकों की मानसिकता पर हावी होने के बजाय इस वर्ग को प्रोत्साहित

एवं अभिप्रेरित करता रहा तो यह कहना कदापि अतिशयोक्ति नहीं होगा कि बैंकों में धीरे-धीरे एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है कि बैंकों को अंग्रेजी अधिकारी एवं अंग्रेजी अनुवादकों को नियुक्त करना पड़े। तब यह देखकर कितना आनंद होगा कि बैंकों में 'हिंदी से अंग्रेजी' में अनुवाद करने की प्रवृत्ति ने किस प्रकार पहले की प्रवृत्ति को कमजोर बना दिया।''

जिस प्रकार वाणिज्य-क्षेत्र अब व्यापक रूप में दिखाई देता है, उसी प्रकार वाणिज्य-साहित्य संबंधी सामग्री में भी व्यापकता दिखाई देती है। अतः वाणिज्यिक सामग्री भी अनुवाद के लिए पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। वाणिज्य-अनुवाद के अंतर्गत व्यापार, उद्योग-धंधे, बैंक, फिल्म, पर्यटन तथा विज्ञापन आदि आते हैं। वर्तमान युग में इस अनुवाद का मुख्य क्षेत्र बैंकिंग और विज्ञापन में दिखाई देता है। वाणिज्य-अनुवाद में व्यापार से संबंधित दस्तावेज, व्यावसायिक पत्र, यथा – माँग-पत्र, भुगतान संबंधी पत्र, शिकायत पत्र, क्षतिपूर्ति पत्र, निविदाएँ, सूचनाएँ, नियमावली, निर्देश, उद्घोष और तत्संबंधी सभी प्रकार की सामग्री आती है। फिल्म-डबिंग, पर्यटन क्षेत्र की मार्गदर्शक पुस्तिकाएँ तथा जानकारी पत्र आदि की सामग्री इसी के अंतर्गत आती हैं।

वाणिज्यिक अनुवाद की समस्याएँ

वाणिज्य एवं बैंक साहित्य का अनुवाद करते समय अनुवादक को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन सभी पक्षों पर गंभीर चिंतन-मनन की अपेक्षा है। इनके बारे में क्रमशः विवेचन इस प्रकार है :

1. अर्थ के अनर्थ की समस्या

वाणिज्य एवं बैंकिंग अनुवाद में सर्वप्रथम समस्या तब आती है जब क्षेत्र-विशेष से संबंधित पर्याप्त ज्ञान के अभाव में अनुवादक, शब्दानुवाद के कारण अर्थ का अनर्थ कर बैठता है। वाणिज्य-अनुवाद की सामग्री अन्य विषयों की सामग्री की तुलना में जन-साधारण के लिए होती है। इसलिए जन-साधारण की भाषा का प्रयोग वाणिज्य एवं बैंकिंग अनुवाद की विशेषता होती है। इसकी भाषा में अर्थ-विशेष एवं भाव-विशेष के सूचक शब्दों पर अन्य वाणिज्यिक अभिव्यक्तियों का प्रयोग आम आदमी की भाषा का अभिन्न अंग हुआ करती है। वाणिज्य-साहित्य के अनुवाद में कभी-कभी 'Negotiable instrument', 'Preference share', 'Banking Principle', 'Bucket shop', 'Bull regging' जैसी विशिष्ट शब्दावली का शब्दानुवाद करने पर अर्थ का अनर्थ होने की संभावना बनी रहती है। इस समस्या के समाधान के लिए अनुवादक को भावानुवाद की पद्धति अपनानी चाहिए, ताकि मूल में निहित अर्थ को आसानी से लोग समझ सकें। साथ ही अनुवादक को संदर्भगत अर्थ को पकड़ने का प्रयास भी करना चाहिए। इस तथ्य की पुष्टि के लिए निम्नलिखित

उदाहरण देखिए :

	विशिष्ट अभिव्यक्ति		अर्थ का अनर्थ
1.	Bad debts	–	बुरे ऋण
2.	Drawings	–	चित्रकला
3.	Frozen credit	–	जमा हुआ/मरा हुआ पैसा
4.	Forward business	–	आगे ले जाने वाला व्यापार/ आगे चलने वाला व्यापार
5.	Easy money	–	सरल मुद्रा/आसान धन
6.	Proforma invoice	–	फार्म के रूप में बीजक
7.	Protected bull	–	खरीदे गए सुरक्षा हेतु रखा गया साँड
8.	Lay days	–	मंदी के दिन
9.	Upset price	–	परेशान करने वाला मूल्य
10.	Settlement day	–	निर्धारित दिन

प्रस्तावित अनुवाद एवं निहित अर्थ

1. अप्राप्य ऋण (किसी लेनदार से धन-प्राप्ति की आशा न होना)
2. आहरण (निजी उपयोग के लिए व्यापारी द्वारा व्यापार से निकाली गई राशि)
3. शुष्क साख (जिस साख से ऋण मिलना दुर्लभ हो जाए)
4. अग्रिम व्यापार (माल की सुपुर्दगी भविष्य में दिए जाने हेतु किया सौदा)
5. सुलभ मुद्रा (बाजार में आसानी से उधार मिलने वाली मुद्रा)
6. सूचनार्थ बीजक (विक्रेता द्वारा ग्राहक के लिए खरीदे गए माल के मूल्य का अनुपात ज्ञात करने हेतु बनाए जाने वाला बीजक/बिल)
7. सुरक्षित तेजड़िया (वायदे के सौदे में कीमतें बढ़ते ही किसी तेजड़िए द्वारा किया गया विक्रय)
8. माल लादने और उतारने की अवधि
9. न्यूनतम मूल्य (जिस मूल्य पर नीलामी शुरू होती है)
10. भुगतान दिवस (वायदे के सौदों के भुगतान की निश्चित तिथि)

2. भाषा की सहजता एवं बोधगम्यता की समस्या

वाणिज्यिक-अनुवाद को सहज और बोधगम्य बनाने के लिए अत्यधिक शुद्धतावाद को नकारना आवश्यक है। व्यावहारिक हिंदी में प्रयुक्त लिंग, वर्तनी, उपसर्ग, रूपिम आदि के कारण होने वाली अनियमितता, ध्वनि-प्रतीक चिह्नों की अपर्याप्तता आदि से उत्पन्न

कठिनाइयों की अपेक्षा वाणिज्यिक अनुवाद के कथ्य एवं उसके प्रयोग के विभिन्न रूपों में सर्वमान्य सरलीकरण को वरीयता दी जानी चाहिए। अंग्रेजी के लंबे तथा जटिल वाक्यों का हिंदी में अनुवाद करते समय हिंदी भाषा की प्रकृति एवं प्रवृत्ति के अनुसार वाक्य या वाक्यांश सरल तथा बोधगम्य होने चाहिए। कभी-कभी पारिभाषिक शब्दों के कई ऐसे पर्यायवाची शब्द पाए जाते हैं जो बोधगम्यता तथा अर्थाभिव्यक्ति में अधिक सिद्ध होते हैं। ऐसे में कथ्य एवं प्रयुक्ति के संदर्भ के अनुसार विषय के क्षेत्रानुरूप शब्दों का चयन कर उनका प्रयोग किया जाना चाहिए।

वाणिज्य तथा बैंक संबंधी सामग्री में मुख्यतः दो प्रकार की भाषा का प्रयोग परिलक्षित होता है – एक, पारिभाषिकता के गुण से संपन्न; दूसरे, जनसाधारण की भाषा। इस प्रकार की स्रोत सामग्री में एक ओर सूचनात्मक भाषा तथा दूसरी ओर जनसामान्य की सहज भाषा का मिला-जुला रूप देखने को मिलता है। लेकिन इस प्रकार की सामग्री के अनुवाद में सूचनात्मकता तथा भाषिक सहजता को एक साथ संप्रेषित करना अत्यंत कठिन होता है। अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद करते समय सूचनात्मकता तथा भाषिक सहजता को बनाए रखना अनुवादक के लिए एक चुनौती होता है। इसमें हिंदी भाषा की सहज प्रकृति को भी रखना होता है और मूल भाषा की सूचनात्मकता को भी।

अनुवादक का मूल भाषा और लक्ष्य भाषा पर समान तथा अपेक्षित स्तर का अधिकार होना अत्यंत आवश्यक है। उसे दोनों भाषाओं की प्रकृतियों का ध्यान रखते हुए हिंदी को अंग्रेजी की प्रकृति के प्रभाव से मुक्त रखना चाहिए। प्रत्येक भाषा की अपनी संरचना (structure) होती है, अपना भाव-जगत् होता है, उन्हें एक-दूसरे की शाब्दिक संरचनाओं में बाँधना कठिन होता है। इसलिए एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपांतरण करते समय वाक्य संरचना की ओर ध्यान देने की आवश्यकता होती है। अंग्रेजी के कुछ ऐसे वाक्य हैं, जिनका अनुवाद शब्द-प्रति-शब्द नहीं किया जा सकता, बल्कि हिंदी की प्रकृति के अनुसार रूपांतरण करना होता है। उदाहरण के तौर पर :

मूल वाक्य

1. Use cage for writing the amount.
2. Check cypher sheets.
3. Tendency of concentrating wealth.
4. Return of cheque through oversight.
5. Daily calling out of entries.

सामान्य अनुवाद

1. राशि लिखने के लिए पिंजरे का प्रयोग करें।
2. जाँच शून्य पत्र।

3. धन एकाग्रता की प्रवृत्ति।
4. दृष्टि-दोष से चैक की वापसी।
5. प्रविष्टियों का दैनिक बुलावा।

प्रस्तावित अनुवाद

1. धनराशि लिखने के लिए कोष्ठक का प्रयोग करें।
2. जाँच संकेताक्षर पत्र।
3. धन को एकत्रित करने की प्रवृत्ति।
4. अनजाने में बैंक की वापसी।
5. प्रतिदिन प्रविष्टियाँ भरना।

3. संक्षिप्ताक्षरों की समस्या

वाणिज्य-शब्दावली में संक्षिप्ताक्षरों का अत्यधिक प्रयोग किया जाता है। वाणिज्य संबंधी प्रचलित शब्दों का प्रयोग करने में समय एवं श्रम नष्ट होता है। इसलिए इन्हें पूरा न लिखकर संक्षिप्त रूप में ही लिखा जाता है। आज व्यवहार में ये संक्षिप्ताक्षर इतने अधिक प्रचलित हो गए हैं कि वाणिज्य से जुड़े लोगों को इन पर निर्भर रहना पड़ता है। वाणिज्य में इनकी भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। जैसे,

	अंग्रेजी शब्द	संक्षिप्ताक्षर	हिंदी पर्याय
1.	Appendix	App.	परिशिष्ट
2.	Against all risks	A.R.	सब जोखिमों के विरुद्ध
3.	Cash on Delivery	C.O.D.	माल सुपुर्दगी पर भुगतान
4.	Cash Credit	C/C	नकद साख
5.	Consular Invoice	Con.Inv.	यात्री विक्रेता के बीजक
6.	Dead weight	D/W	भारी वजन का माल
7.	Debtor	Dr.	ऋणी
8.	Day Book	D/B	रोजनामचा
9.	Days after acceptance	D/A	स्वीकृति के पश्चात् दिन
10.	Railway Receipt	R/R	रेलवे रसीद

इसलिए वाणिज्य-साहित्य के अनुवादक के लिए इस प्रकार के शब्दों, उनके संक्षिप्ताक्षरों तथा हिंदी पर्यायों का पर्याप्त ज्ञान बहुत आवश्यक है। इनके ज्ञान के बिना भला अनुवादक क्या अर्थ संप्रेषित करेगा?

4. शब्दावली की समस्या

वाणिज्य-साहित्य में अनेक ऐसे पारिभाषिक शब्द हैं जिनका अनूदित रूप प्रयोग

में लाया जाता है। किंतु ये अनूदित शब्द इतने कठिन हैं कि आम आदमी उन्हें नहीं समझ सकता। फिर इनका लाभ ही क्या है? क्यों न हम ऐसे शब्दों को ज्यों-का-त्यों ही प्रयोग में लाएँ। इससे सभी को अर्थ भी आसानी से समझ में आएगा और किसी भी प्रकार की अस्पष्टता एवं संदिग्धता जैसी समस्या नहीं आएगी। अतः इस संदर्भ में अंग्रेजी के बहुप्रचलित शब्दों का लिप्यंतरण करते हुए ही उनका प्रयोग किया जाना चाहिए। इससे भाषा में ही सहजता आ जाती है। निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत हैं :

	अंग्रेजी शब्द	हिंदी समतुल्य	लिप्यंतरित शब्द
1.	Overdraft	अधिविकर्ष	ओवर ड्राफ्ट
2.	Bonus	अभिलाभांश	बोनस
3.	Cross Rate	अप्रत्यक्ष क्षमता	क्रॉस रेट
4.	Security	प्रतिभूति	सिक्योरिटी
5.	Underwriter	अभिगोपक	अंडर राइटर
6.	Turnover	अवधि विक्रय	टर्न ओवर
7.	Preference Share	पूर्वाधिकार अंश	प्रीफरेंस शेयर
8.	Counter foil	प्रतिपर्ण	काउंटर फाइल
9.	Premium	अधिमूल्य	प्रीमियम
10.	Voucher	आधार पत्र	वाउचर

यद्यपि कुछ लोग इन शब्दों के हिंदी पर्यायों के प्रयोग करने के पक्ष में हैं, तथापि संदर्भ के अनुसार इनके लिए सुविधा और बोधगम्यता के लिए लिप्यंतरित शब्दों का प्रयोग करना ही श्रेयस्कर होगा।

5. शब्दावली में अनेकरूपता की समस्या

वाणिज्य एवं बैंकिंग-साहित्य के अनुवाद में एक समस्या यह आती है कि इसमें एक ही मूल शब्द के लिए हिंदी में अनेक पर्याय उपलब्ध हैं। अतः इससे अनेकरूपता की समस्या उत्पन्न हो जाती है। इन पर्यायों में से सही पर्याय का चुनाव करना कई बार अनुवादक के लिए कठिन हो जाता है। अनुवाद में सही पर्याय का बहुत महत्त्व होता है। गलत पर्याय का प्रयोग करने से अनुवाद की भाषा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस समस्या के समाधान हेतु यथासंभव किसी एक शब्द को मानक शब्द मान लेना चाहिए और उसी का प्रयोग करना चाहिए। किंतु मानक शब्द का प्रयोग करते समय भी एकरूपता का ध्यान रखना चाहिए। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

	अंग्रेजी शब्द	हिंदी पर्याय
1.	Chief	प्रमुख/मुखिया/सर्वोच्च

2.	Chart	सारणी/लेखा/नक्शा
3.	Statutory	सांविधिक/परिनिष्ठित/अधिनियमित
4.	Clearance	निकासी/समाशोधन
5.	Security	जमानत/सुरक्षा/प्रतिभूति
6.	Initials	प्राक्षर/आद्यक्षर

6. लिप्यंतरण की समस्या

वाणिज्य एवं बैंकिंग अनुवाद में लिप्यंतरण की समस्या एक महत्त्वपूर्ण समस्या के रूप में सामने आती है। इस संदर्भ में डॉ. अर्जुन चव्हाण का मत है कि किसी भी प्रकार की सामग्री हो, उसके अनुवाद में कुछ शब्दों का लिप्यंतरण अवश्य करना पड़ता है अर्थात् वाणिज्य विषयक सामग्री के अनुवाद में तो लिप्यंतरण के लिए अधिक गुंजाइश होती है। किसी व्यक्ति का नाम हो या वस्तु का, स्थान का नाम या पद का, किसी अधुनातन संकल्पना का नाम हो या योजना का, अनुवाद की अपेक्षा इनका लिप्यंतरण ही संभव होता है। जब एक भाषा के शब्द अथवा संज्ञा के लिए दूसरी भाषा में पर्याय उपलब्ध नहीं होता तब अनुवादक के सामने लिप्यंतरण ही एकमात्र उपाय बचता है; जैसे – हिंदी में बैंक, अगस्त, सितंबर, लंदन, रूस, टेंडर, नोटिस, बजट, चैक जैसे सैकड़ों शब्द हैं, जो लिप्यंतरित होकर आए हैं। वाणिज्य तथा बैंक संबंधी सामग्री के अनुवाद में लिप्यंतरण शब्द की भरमार होती है। यह खेद का विषय है कि हमारे यहाँ लिप्यंतरण करने की न कोई निश्चित विधि बनाई गई है और न ही कोई सुव्यवस्थित दिशा तय की गई है। अतः वाणिज्य तथा बैंक से संबंधित सामग्री के अनुवाद में जहाँ भी लिप्यंतरण करना जरूरी होता है, वहाँ पर समस्या खड़ी होती है, क्योंकि लिप्यंतरण में अव्यवस्था होने के कारण सुनिश्चित दिशा में शब्दों के लिप्यंतरण नहीं हो पाते। एक ही शब्द के दो-दो, तीन-तीन पद्धतियों में लिप्यंतरण किए हुए मिलते हैं। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी 'Bank' के हिंदी में 'बैंक-बेंक', 'Cheque' के लिए 'चेक-चैक', 'America' के लिए 'अमरिका-अमरीका-अमेरिका', 'October' के लिए 'अक्तूबर-अक्टूबर' आदि। उच्चारण में लिप्यंतरण शब्दों के अनेक रूप नजर आते हैं; जैसे – 'Shampoo' का 'शैंपू, शेंपू, सैंपू', 'Europe' का 'यूरोप, योरोप'; 'Doctor' का 'डाक्टर, डॉक्टर'; 'George Bush' का 'जार्ज बुश, ज्यार्ज बुश'; 'Bazaar' का 'बाजार, बजार' आदि।

स्पष्ट है कि लिप्यंतरण की समस्या के समाधान के लिए अभी तक कोई विशेष प्रविधि उपलब्ध नहीं है। अतः लिप्यंतरित शब्द से प्रायः अनुवाद में भ्रामकता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अनुवाद को स्वाभाविक बनाने के लिए इस संदर्भ में कोई ठोस एवं निश्चित नीति निर्धारित होनी चाहिए।

7. हिंदी की प्रकृति के अनुकूल शब्दावली की आवश्यकता

अनुवाद करते समय कभी-कभी ऐसे अवसर भी आते हैं जब पूरे वाक्य-खंड का अनुवाद हिंदी के एक शब्द में हो जाए। लेकिन ऐसा करते समय हिंदी भाषा की प्रकृति का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

मूल वाक्यांश	सामान्य अनुवाद	प्रस्तावित अनुवाद
1. In order of merit	योग्यता के क्रमानुसार	योग्यतानुसार
2. As far as practicable	जहाँ तक संभव हो	यथासाध्य
3. In course of time	समय के साथ	यथासमय
4. According to one's Ability	व्यक्ति की शक्ति के अनुसार	यथाशक्ति
5. On compassionate grounds	मानवीय आधार पर	कृपापूर्वक
6. Void of common sense	सामान्य समझ का अभाव	विवेकशून्य

अतः अनुवाद करते समय हिंदी की अपनी प्रकृति के अनुसार वाक्य-रचना होनी चाहिए और उसी की अभिव्यक्ति शैली पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आज वाणिज्य एवं बैंकिंग साहित्य के अनुवाद का अत्यधिक महत्त्व है और यह निरंतर बढ़ता ही जा रहा है। उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के इस दौर में भारत एक बहुत बड़े बाजार के रूप में उभरकर सामने आ चुका है। इसलिए इतनी अधिक जनसंख्या को केवल अंग्रेजी के बलबूते पर ही संतुष्ट नहीं किया जा सकता। आम आदमी की भाषा होने के कारण हिंदी की अनिवार्यता निर्विवाद है। इसलिए वाणिज्य साहित्य के अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। वाणिज्य अनुवाद के अंतर्गत आने वाला प्रमुख क्षेत्र बैंकिंग एवं विज्ञापन का क्षेत्र है। चूँकि इसमें विषय-विशेष संबंधी भाषा का प्रयोग किया जाता है, इसलिए अनुवादक से भी विषय-विशेष की अच्छी जानकारी अपेक्षित होती है।

❑

प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी

वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद

अंग्रेज़ी के सुविख्यात आलोचक आई.ए. रिचर्ड्स ने भाषा और साहित्य के संबंधों का विवेचन करते हुए भाषा के दो मुख्य प्रयोग माने हैं – एक, भाषा का वैज्ञानिक प्रयोग और दूसरा, भाषा का भावात्मक प्रयोग। भाषा के वैज्ञानिक प्रयोग में किसी वस्तु की ओर संकेत किया जाता है अथवा किसी सिद्धांत, तथ्य आदि की सूचना दी जाती है या विवेचन किया जाता है। भावात्मक प्रयोग में मनोवेगों तथा मनोवृत्तियों को व्यक्त किया जाता है अथवा रागात्मक भावों से पाठक को उत्प्रेरित किया जाता है और उसे रसास्वादन कराया जाता है। इस प्रकार भाषा के ये दो प्रयोग भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए होते हैं और यही कारण है कि इन दोनों भाषा-रूपों की अपनी-अपनी विशिष्टताएँ होती हैं। प्रकार्यात्मक या प्रयोजनमूलक स्तर पर जो भाषा-भेद मिलते हैं, वास्तव में वे विभिन्न विषयों अथवा कार्यक्षेत्रों के संदर्भ में प्रयुक्त होने के कारण अपना विशिष्ट रूप लिए होते हैं। उन्हें 'प्रयुक्ति' की संज्ञा दी गई है। वस्तुतः प्रयुक्ति एक शैली ही है। शैली और प्रयुक्ति में अंतर केवल सामाजिक स्थिति और कार्यक्षेत्र के भेद के कारण हुआ है। शैली के संदर्भ में विभिन्न सामाजिक भूमिकाओं का प्राधान्य रहता है जबकि प्रयुक्ति कार्यक्षेत्र प्रधान है। प्रयुक्ति विशेष की शैली के लिए औपचारिक प्रशिक्षण की आवश्यकता रहती है जबकि सामाजिक शैली अनौपचारिक, सहज और स्वाभाविक रूप से सीख ली जाती है। इस तरह प्रयुक्ति में कार्यक्षेत्र या विषय की तकनीकी और पारिभाषिक शब्दावली का विशेष योगदान रहता है और विशिष्ट शाब्दिक अन्विति तथा भाषा संरचना का तालमेल आवश्यक है।

विज्ञान भी एक विस्तृत प्रयुक्ति है। इसके अंतर्गत जो उपप्रयुक्तियाँ कहलाती हैं, वे भौतिकी (Physics), रासायनिकी (Chemistry), वनस्पतिविज्ञान (Botany), प्राणिविज्ञान

(Zoology), भूविज्ञान (Geology), अभियांत्रिकी (Engineering), प्रौद्योगिकी (Technology), आयुर्विज्ञान (Medical Science) आदि अनेक वैज्ञानिक विषय हैं। यहाँ वैज्ञानिक प्रयुक्ति से अभिप्राय पदार्थवाची विज्ञान से है। इसका संबंध भौतिक वस्तुओं और बहिरंग जगत से होता है। ये विषय स्वयं के अध्ययन क्षेत्र तक सीमित न रह कर विज्ञान की अन्य शाखाओं-प्रशाखाओं के क्षेत्र का अतिक्रमण करते रहते हैं, जिनसे एक अलग ज्ञान शाखा का जन्म होता है। जैव-रसायन (Biochemistry), खगोल भौतिकी (Astrophysics), जैव प्रौद्योगिकी (Biotechnology), भूवनस्पतिविज्ञान (Geobotany), भूभौतिकी (Geophysics) आदि विज्ञान की ऐसी करीब 600 शाखाओं का विकास हुआ है और हो रहा है। एक अन्य संकल्पनावाची विज्ञान भी है, जिसका संबंध अंतरंग जगत से है और यह सूक्ष्म तथा अमूर्त भावों और रूपों का अध्ययन करता है। दर्शन (Philosophy), मनोविज्ञान (Psychology), अर्थशास्त्र (Economics) आदि विषय संकल्पनावाची विज्ञान के अंतर्गत आते हैं। इन्हें मानविकी (Humanities) भी कहते हैं, क्योंकि इनका संबंध मानव जीवन तथा मानव मन से होता है।

विज्ञान और उसकी भाषा का वैशिष्ट्य

पदार्थवाची विज्ञान वास्तव में शुद्ध विज्ञान है। विज्ञान भी साहित्य की भाँति सत्य का अन्वेषण करता है। दोनों के सत्य में तो कोई अंतर नहीं है, किंतु दोनों की अभिव्यक्ति और कार्य-प्रणाली में भेद है। विज्ञान की प्रणाली विवेचनात्मक और विश्लेषणात्मक होती है जबकि साहित्य में प्रस्तुतीकरण या अभिव्यक्ति पर बल दिया जाता है। विज्ञान की भाषा का अपना अलग अस्तित्व होता है। सामान्य भाषा से अपने अलग अर्थतंत्र (semantic system) के चयन के कारण यह भिन्न हो जाती है। उदाहरण के लिए, 'जल', 'नीर', 'पानी' का एक अलग अर्थतंत्र है और पानी का H_2O (हाइड्रोजन और ऑक्सीजन का सम्मिश्रण) होना दूसरा अर्थतंत्र है। इसमें संदेश और विषय-सामग्री पर बल दिया जाता है। वास्तव में भाषा का मूलाधार सामान्यीकृत संकल्पना है। विज्ञान की भाषा पीछे की ओर जाती है अर्थात् संकल्पना से प्रत्यक्ष की ओर; जैसे – धातु से लोहा और लोहा से उसके भौतिक अथवा रासायनिक गुण और उसके बाद उसके आणविक गठन पर दृष्टि जाती है। इस प्रकार विज्ञान की भाषा में संकल्पना और वस्तु का संबंध बहुत निकट होता है और उसकी संरचना काफी सरल और स्पष्ट होती है। इसमें तथ्यों, संकल्पनाओं, प्रक्रियाओं, सिद्धांतों, व्यावहारिक रूपों आदि को सहज और सरल रूप से संप्रेषित किया जाता है। यह भाषा तर्कपूर्ण, विश्लेषणात्मक, अलंकार-रहित, शैली-निरपेक्ष तथा निर्वैयक्तिक होती है। विज्ञान की सार्वभौमिकता को व्यक्त करने के लिए भाषा में सामान्यतः वर्तमानकाल 'ता है – ती है – ते है, होता है' जैसी नियतकालिक क्रियाओं का प्रयोग होता है

तथा संयुक्त वाक्यों का प्रयोग प्रायः कम होता है। उदाहरण के लिए;

'हार्मोन उस पदार्थ को कहते हैं, जो अंतःस्रावी ग्रंथि (वाहिनी ग्रंथि) द्वारा स्रवित होते हैं। हार्मोन विभिन्न शारीरिक क्रियात्मक कार्य पैदा करने के लिए रुधिर प्रवाह द्वारा शरीर के विविध अंगों तक लाए जाते हैं। ये अल्प मात्रा में आवश्यक होते हैं। हार्मोन अपने कार्य में विशिष्ट होते हैं। हार्मोन की कमी के कारण कई प्रकार के रोग हो सकते हैं।'

विज्ञान की भाषा तथ्यपरक संदर्भों की भाषा होती है। इसमें कार्य-कारण संबंध होता है। वह मूर्त भाषा होती है, जिसमें तथ्य और कथ्य अर्थात् सूचना की प्रधानता के कारण इसकी अभिव्यंजना शैली में जटिलता नहीं होती। इसी कारण इसमें 'कैसे' (अर्थात् शैली) की अपेक्षा 'क्या' (अर्थात् विषय) पर अधिक बल दिया जाता है। पारिभाषिक शब्दावली की स्पष्टता और सटीकता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। अभिधा शक्ति वास्तव में इसकी शक्ति है और लक्षणा तथा व्यंजना इसकी सीमा।

विज्ञान की भाषा विषयपरक होने के कारण वर्णनात्मक होती है। यह देश-काल से बाधित नहीं होती और न ही यह व्यक्ति-सापेक्ष होती है। इसमें वैज्ञानिक नियम का विवेचन और विश्लेषण होता है, जिसमें सार्वभौमिकता का गुण निहित होता है। इसमें किसी वस्तु अथवा विषय के बारे में सूचना का विवरण संप्रेषित किया जाता है। उदाहरण के लिए :

'भूखनन में अपरिष्कृत तेल प्राप्त होता है। उसमें आरंभ में ज्वलनशील गैस निकलती है। इसे प्राकृतिक गैस कहते हैं, जो घरों में भोजन बनाने के काम आती है। प्राकृतिक गैस अधिक दाब में द्रव्य रूप में रहती है, किंतु सामान्य तापक्रम पर यह गैस में परिणत हो जाती है।'

वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद की समस्याएँ

प्रश्न उठता है कि वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद में क्या-क्या समस्याएँ पैदा होती हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि वैज्ञानिक अनुवाद साहित्यिक अनुवाद की अपेक्षा सरल होता है, किंतु यह बात सही नहीं है। वास्तव में साहित्यिक अनुवाद में केवल दो भाषाओं का उत्तम ज्ञान ही अनिवार्य होता है, विषय के ज्ञान का अधिक महत्व नहीं है, किंतु वैज्ञानिक अनुवाद में स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा दोनों भाषाओं की अच्छी जानकारी के साथ-साथ विषय का भी समुचित ज्ञान होना आवश्यक है। इन तीनों बातों के अभाव में वैज्ञानिक अनुवाद की उत्कृष्टता पर प्रश्नचिह्न लग सकता है। मूल अर्थ को समझे बिना लक्ष्य भाषा में व्यक्त करने से अनुवाद बोझिल, कृत्रिम और अटपटा हो सकता है। शब्द के लिए प्रतिशब्द रख देने से अनुवाद न केवल कृत्रिम और बोझिल होगा, बल्कि उसमें

अर्थ के अनर्थ होने की भी पूरी-पूरी संभावना रहेगी। एक उदाहरण इस प्रकार है :

मूल पाठ

The World Health Organisation has defined drug dependence as a state of psychic (mental) or physical (bodily) dependence or both, on a drug arising in a person following administration of that on a periodic or a continous basis. Drug dependence can be substituted for addiction since it covers all the drugs which give rise to a desire or need for repeated administration.

अनूदित पाठ

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने औषधि-निर्भरता को मानसिक अथवा शारीरिक अवस्था अथवा दोनों की निर्भरता के रूप में परिभाषित किया है। औषधि-निर्भरता व्यसन के लिए प्रतिस्थापित हो सकती है, क्योंकि यह उन सभी औषधियों का आवरण करती है, जो आवृत्तिजन्य आचरण (दोहराई गई व्यवस्था) की इच्छा अथवा आवश्यकता में व्याप्त है।

संशोधित पाठ

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने औषध-निर्भरता की परिभाषा इस प्रकार दी है – समय-समय पर या लगातार औषध लेने के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति में उस औषध के लिए मानसिक या शारीरिक अथवा दोनों तरह की निर्भरता की स्थिति पैदा होना है। औषध-निर्भरता धीरे-धीरे व्यसन रूप ले लेती है, क्योंकि इसमें वे सभी औषध आ जाते हैं जिनको बार-बार लेने की इच्छा या आवश्यकता होती है।

उपर्युक्त उदाहरण से पता चलता है कि अंग्रेज़ी पाठ अनूदित पाठ से अधिक बोधगम्य है। हिंदी अनुवाद की भाषा बोझिल और कृत्रिम लग रही है। वास्तव में वैज्ञानिक अनुवाद में विषय-वस्तु का सर्वोपरि स्थान है। इसमें विषयगत प्रामाणिकता, यथातथ्यता और सुपाठ्यता का महत्वपूर्ण स्थान है। हाँ, लोक वैज्ञानिक साहित्य में विषयगत और शैलीगत दोनों विशिष्टताओं का समन्वय हो सकता है। जैसे – Health is Wealth वाक्य का 'स्वास्थ्य ही धन है', 'जान है तो जहान है', 'सेहत से बढ़ कर कोई दौलत नहीं' आदि शैलीगत अभिव्यक्तियाँ अनुवाद में लावण्य और सौंदर्य पैदा कर सकती हैं।

वैज्ञानिक अनुवाद अर्थ-संप्रेषण और मूल पाठ के तभी निकट होता है, जब उसकी संरचना पर ध्यान दिया जाए। उसकी शब्दावली उपयुक्त और सटीक हो। उदाहरण के लिए :

मूल पाठ

When the steam pushes the piston, some kinetic energy of the water molecules will be transferred to the piston and the crankshaft attached

to it and consequently, they are set into motion. The steam expands and loses some of its heat energy. As a result, it condenses into water. The piston is than pushed back into the cylinder. Fresh hot steam is again introduced into the cylinder after letting out the condensed water. The fresh steam again pushes the piston out and the cycle is repeated. When the piston is pushed out by the 'expanding steam', it is called the expansion stroke. When the piston moves back pushing out condensed steam, it is called the 'exhaust stroke'.

अनूदित पाठ

जब वाष्प पिस्टन को आगे धकेलता है तब जलाणुओं की कुछ गतिज ऊर्जा पिस्टन और उसमें जुड़ी हुई क्रेंकधुरी का अंतरण हो जाता है। इससे वे गति पकड़ते हैं। वाष्प का विस्तारण होता है और वह अपनी कुछ ताप ऊर्जा खो देता है। इससे वह घनीभूत होकर जल बन जाता है। उसके बाद पिस्टन बेलन में धकेलता जाता है। घनीभूत जल के बाहर निकलने के बाद नए सिरे से गरम वाष्प को बेलन में छोड़ा जाता है। वह वाष्प फिर से पिस्टन को बाहर धकेलता है और इसी प्रकार इस चक्र की आवृत्ति होती है। जब विस्तीर्ण वाष्प द्वारा पिस्टन को बाहर धकेला जाता है तो इसे 'विस्तार चरण' कहते हैं और जब घनीभूत वाष्प को बाहर धकेलते हुए पिस्टन अपने स्थान पर जाता है, तब उसे 'निष्क्रिय चरण' कहते हैं।

इसी प्रकार प्राणिविज्ञान में 'In the preparation of plant material for human consumption, we eliminate most of the cellulose in the woodly portions'. वाक्य के अनुवाद में 'woodly portions' का अर्थ साग, सब्जी, फसल आदि के डंठल, छिलके आदि के कड़े भाग से है, न कि लकड़ी के भागों से। इसी प्रकार similary bees wake up very quickly in the light के अनुवाद में 'wake up' का अर्थ 'जाग जाती है' नहीं होगा, वरन् प्राणिविज्ञान के अनुसार 'सक्रिय हो जाती है' होगा।

वैज्ञानिक साहित्य में रासायनिक सूत्रों, गणितीय चिह्नों, प्रतीकों, संकेतों और विशिष्ट अभिव्यक्तियों का काफी प्रयोग होता है और उनका अपना महत्व भी है। वैज्ञानिक समीकरणों, सूत्रों आदि में अनेक प्रकार के प्रतीक प्रयुक्त होते हैं। उदाहरण के लिए, रासायनिक तत्वों के नाम भी वैज्ञानिक सूत्रों या संकेतों में दिए जाते हैं, जैसे – H_2O जल के लिए, H_2SO_4 सल्फ़्यूरिक अम्ल के लिए, Nacl सोडियम क्लोराइड के लिए, Fe लोहे के लिए, CO_2 कार्बन डाइऑक्साइड के लिए प्रयुक्त होते हैं। अनुवाद में इन सूत्रों का प्रयोग करते हुए इनकी व्याख्या की जाए अथवा कोष्ठक में इनके विस्तृत नाम दिए जा सकते हैं अन्यथा संप्रेषण और बोधगम्यता में कठिनाई आने की संभावना रहेगी। यदि वैज्ञानिक सूत्र में यह लिखा जाए $Zn + H_2SO = ZnSO_4 + H_2$ तो इसका आशय

यह है कि सल्फ़्यूरिक अम्ल जब जिंक पर क्रिया करता है तो जिंक सल्फेट ($ZnSo_4$) तथा हाइड्रोजन (H_2) बन जाते हैं।

गणित में अनुवाद करने के लिए भाषा कम होती है, गणितीय प्रतीक, सूत्र, व्यंजक आदि अधिक होते हैं। गणित की आत्मा लाघव अर्थात् संक्षिप्तता, सटीकता और परिशुद्धता अर्थात् अर्थ स्पष्टता में होती है। इसलिए यही उचित है कि गणितीय शैली में अनुवाद किया जाए। उदाहरण के लिए; गणितज्ञ के लिए बीजगणित व संकेतों में निरूपित समीकरण शक्ति अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत समीकरण की अपेक्षा अधिक सहज और सुगम होता है; जैसे $(x + y)^2 = x^2 + y^2 + 2xy$. गणित के इस समीकरण का अर्थ यह है कि किन्हीं दो क्रमिक अंकों के योग का वर्गफल दो अंकों को वर्ग तथा उनका दुगुना योग होगा। गणित के अनुवाद में वाक्य विन्यास का ध्यान रखना आवश्यक है, जैसे – a equals bc का अनुवाद 'bc के बराबर है a' रखना अधिक स्पष्ट न होगा न कि 'a, bc के बराबर है'। गणित की अपनी शब्दावली होती है और उसी से गणितीय अर्थ स्पष्ट होता है, जैसे – A rod is resting against a sphere placed on a rough table का अनुवाद 'रूक्ष मेज़ पर रखे गोले के प्रति एक छड़ विराम-अवस्था में है।' यहाँ rest का अर्थ 'विराम-अवस्था' होगा।

वास्तव में $\alpha, \beta, \gamma, \delta, \phi, \pi$. जैसे ग्रीक एवं अंग्रेज़ी अथवा अंग्रेज़ी में प्रयुक्त अन्य भाषापरक प्रतीकों और संकेतों की संख्या बहुत अधिक है। हिंदी में इनका अनुवाद करना कठिन है। यदि इनका अनुवाद किया जाता है तो उसे समझा नहीं जा सकता और अनुवाद करते समय ये प्रतीक व्यवधान भी पैदा करते हैं। इनका अनुवाद न किए जाने पर लक्ष्य भाषा (हिंदी) स्रोत भाषा (अंग्रेज़ी) के प्रभाव से आक्रांत हो जाएगी। यदि लक्ष्य भाषा हिंदी में इनका अनुवाद होता है तो हिंदी में समतुल्य अथवा प्रति-प्रतीक अप्रचलित और नया होने के कारण अनुवाद बोझिल और असंप्रेषणीय हो जाता है। वैज्ञानिक साहित्य, विशेषकर गणित, भौतिकी, रसायन आदि में अनेक ऐसे संकेतों (Symbols) को ज्यों-का-त्यों अपनाना ही हितकर है; जैसे – आनुवंशिकी (Genetics) की शब्दावली में X-Chromosome और Y-Chromosome आदि मिलते हैं, जिन्हें अनूदित पाठ में X-क्रोमोसोम और Y-क्रोमोसोम लिखना ही उचित होगा।

इसी प्रकार कई रासायनिक पदार्थों के नाम को संक्षिप्ति या परिवर्णी दी जाती है; जैसे – डाइक्लोरी डाइफिनाइल ट्राइक्लोरईथेन नामक पदार्थ के लिए 'डी.डी.टी.' संक्षिप्ति अधिक प्रचलित है। इसी प्रकार 'डी.एन.ए.', 'ए.टी.पी.', 'एच.टी.पी.एच.' आदि सैकड़ों संक्षिप्तियाँ बन रही हैं। इन संक्षिप्तियों का लिप्यंतरण ज्यों-का-त्यों करना होगा। इन्हें यदि हिंदी वर्णमाला के आधार पर अर्थात् डाइक्लोरी डाइफिनाइल ट्राइक्लोरईथेन के स्थान

पर डा.डा.ट्रा. रखा गया तो बड़ी असुविधा होगी।

इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक विषय को सुबोध, दुग्राह्य और संप्रेषणीय बनाने के लिए आरेखन या रेखाचित्र (diagram) का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। आरेखन में संक्षिप्तीकरण और शब्द सामंजस्य का समन्वय होता है। आरेखन का अनुवाद तो होगा नहीं, किंतु उससे विषय की स्पष्टता अवश्य होगी। साथ ही, आरेखन में प्रयुक्त शब्दों के लक्ष्य भाषा में निर्धारित पर्यायों के चयन से उन शब्दों का प्रयोग लक्ष्य भाषा में भी होने लगेगा।

वैज्ञानिक साहित्य की भाषा के निश्चित स्वरूप के होने से अनुवाद कार्य में बाधा नहीं आती। हिंदी में वैज्ञानिक लेखन अधिक न होने के कारण इसका स्वरूप निश्चित नहीं हो पाया। हिंदी में जो भी वैज्ञानिक साहित्य लिखा गया है, उसका अनूदित स्वरूप अधिक उभरा है, मूल लेखन नहीं हुआ। इसमें प्रयुक्त शब्द, पदबंध, वाक्य-रचनाएँ आदि के साँचे निर्धारित नहीं हो पाए, जो प्रायः हिंदी संरचना के अनुकूल हों। वैज्ञानिक धरातल पर हिंदी का शास्त्रीय स्वरूप पिछड़ा होने के कारण अनुवाद की समस्या बनी हुई है।

पारिभाषिक शब्दावली वैज्ञानिक साहित्य की आधारशिला है। समूचा वैज्ञानिक चिंतन तथा लेखन उसी पर आधारित है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने लाखों शब्दों का निर्माण किया है, किंतु अभी तक उनके कई शब्दों के अनेक अर्थ मिलते हैं। शब्दावली निर्माण का कार्य वर्षों से चल रहा है किंतु अभी भी इन शब्दों का मानकीकरण नहीं हो पाया। एक संस्था हिंदी के एक शब्द का प्रयोग करती है और दूसरी किसी अन्य शब्द का। कंप्यूटर के input और output के लिए 'निवेश और विनिवेश', 'आगत और निर्गत', 'आगत और बहिर्गम' आदि प्रयुक्त होते देखे गए हैं। इस प्रकार एक ही पारिभाषिक शब्द के लिए प्रायः एक से अधिक हिंदी पर्याय मिलते हैं, हालाँकि उच्चतम न्यायालय ने सन् 2004 में दिए अपने विनिर्णय में वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्धारित शब्दों का प्रयोग करने का आदेश दिया है। यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ शब्दों का न तो प्रचलन हो पाया और न ही इसका प्रयास किया गया है। इसमें अपनी भाषा के प्रचलित शब्द-रूपों के सार्थक प्रयोग दिए जाएँ। अन्य भारतीय भाषाओं के शब्द आत्मसात् किए जाएँ और आवश्यकतानुसार विदेशी भाषाओं के शब्दों का भारतीयकरण किया जाए तथा शब्द रचना द्वारा नए शब्दों का निर्माण भी किया जाए।

अनुवादक को कभी सटीक हिंदी पारिभाषिक पर्याय ढूँढ़ने में कठिनाई होती है। अंग्रेज़ी का एक शब्द विभिन्न वैज्ञानिक विषयों के लिए अलग-थलग संकल्पना सँजोए होता है। उदाहरण के लिए; Reaction शब्द भौतिकी में भौतिक बलों की क्रिया के

विपरीत 'प्रतिक्रिया' के रूप में प्रयुक्त होता है। वनस्पति विज्ञान में सूर्यमुखी आदि पुष्पों के संदर्भ में प्राकृतिक किरणों की क्रिया से आकर्षित अथवा प्रभावित होने के कारण 'अभिक्रिया' हो जाता है और रासायनिकी में अम्ल की परस्पर क्रियाओं के कारण 'अनुक्रिया' शब्द के रूप में इस्तेमाल होता है। इसी प्रकार पशु विज्ञान की भी अपनी अलग भाषा है। इसलिए उसमें त्रुटि की संभावनाएँ अधिक रहती हैं। उदाहरण के लिए, Silver fish की संकल्पना स्पष्ट न होने के कारण अनुवादक 'मीन' के अर्थ में लिख देता है, जबकि वह एक प्रकार का कीट है। 'बांबे डक' का अनुवाद 'बत्तख' नहीं होगा, क्योंकि यह मछली की एक 'नस्ल' है। अतः अनुवाद में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करते समय उनकी संकल्पना को स्पष्ट कर लेना उचित होगा।

चिकित्सा विज्ञान में नए-नए रोगों, उनके अनुरूप नई-नई औषधियों और चिकित्सा पद्धतियों तथा उनके उपकरणों के कारण चिकित्सा संबंधी विषय के अनुवाद की आवश्यकता में निरंतर वृद्धि हो रही है। इसके साथ ही उपलब्ध साहित्य का विवेचन और संशोधन भी नियमित रूप से किया जाता रहे और उसे अद्यतन बनाया जाता रहे तो वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद में एकरूपता और मानकीकरण भी होता रहेगा। यदि उच्च स्तर का शोध साहित्य हिंदी में भी प्रकाशित किया जाए और यदि उसकी व्यावहारिक उपयोगिता होगी तो वैज्ञानिकों को भी हिंदी में कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त होगी। इससे हिंदी में तकनीकी शब्दावली का प्रयोग स्वतः ही बढ़ेगा, भाषा का संवर्धन होगा, क्योंकि भाषा प्रयोग से विकसित होती है न कि प्रयोगशाला से। इससे भारतीय जनमानस में वैज्ञानिक प्रतिभा का विकास होगा और वैज्ञानिक लेखन में मौलिकता आएगी और उसके विशिष्ट स्वरूप में वृद्धि होगी।

वैज्ञानिक साहित्य के अनुवादकों का अभाव भी एक गंभीर समस्या है। वैज्ञानिक अनुवादक से यह अपेक्षा रहती है कि वह भाषाविद् के साथ-साथ विषयविद् भी हो। वैज्ञानिक विषय के जानकार अंग्रेज़ी में अधिक हैं तो हिंदी में नगण्य और हिंदी भाषा के विद्वान हैं तो विषय में प्रायः शून्य। ऐसी स्थिति में 'सहयोगपरक अनुवाद' की पद्धति की अपेक्षा रहती है। यदि विषयविद् अनुवाद करता है तो भाषाविद् उसका परिष्कार और परिमार्जन कर सकता है और यदि भाषाविद् करता है तो विषयविद् द्वारा उसका पुनरीक्षण और संशोधन किया जा सकता है।

वैज्ञानिक अनुवाद में पाठक वर्ग का ध्यान रखना आवश्यक है। इसके तीन प्रकार के पाठक हो सकते हैं – विषय-विशेषज्ञ, सामान्य पाठक; और बाल पाठक। विषय-विशेषज्ञ के लिए पारिभाषिक शब्दों के चयन में सतर्कता और सजगता बरतनी पड़ती है, जबकि सामान्य अथवा बाल पाठक के लिए सामान्य प्रयोग की शब्दावली देनी होगी। चिकित्सा

विज्ञान में अंग्रेज़ी Renal colic शब्द डॉक्टरों के लिए प्रयुक्त होता है और सामान्य व्यक्ति के लिए Kidney trouble शब्द है। इनका अनुवाद करते हुए 'वृक्क शूल' और 'गुर्दे का दर्द' के शब्द अलग-अलग वर्ग के लिए देने पड़ेंगे, हालाँकि 'गुर्दा' शब्द 'वृक्क' का एक भाग है। इसी प्रकार Anaemia के लिए 'रक्तक्षीणता' और 'खून की कमी', Dyspepsia के लिए 'अजीर्ण' और 'बदहजमी', Diarrhoea के लिए 'अतिसार' और 'पतले दस्त आना' शब्द अलग-अलग वर्ग के लिए प्रयुक्त होंगे। Typhoid के लिए 'टाइफ़ाइड' और 'आँत ज्वर' विशिष्ट वर्ग के लिए तथा 'मियादी बुखार' और 'मोतीझरा' का प्रयोग सामान्य वर्ग के लिए होता है। रासायनिकी में बोरेक्स ($Na_2B_4O_7IO\,H_2O$), पोटेशियम परमैगनेट ($KMnO_4$), कैल्शियम ऑक्साइड (CaO) आदि वैज्ञानिक सूत्र विशेषज्ञ-वैज्ञानिक के लिए प्रयुक्त होते हैं और इनके पर्याय शब्द क्रमशः 'सुहागा', 'लाल 'दवा' और 'चूना' जन-सामान्य के लिए प्रयुक्त होते हैं। इसी प्रकार प्राणिविज्ञान के तीन शब्द Poison, Venom और Toxin सामान्य पाठक के लिए समानार्थी या एकार्थी या पर्यायवाची हो सकते हैं और वे इन तीनों शब्दों के लिए एक ही शब्द 'ज़हर' या 'विष' का प्रयोग कर सकते हैं। प्राणिविज्ञानियों या विषय-विशेषज्ञों के लिए ये तीनों शब्द भिन्नार्थक हैं। प्राणिविज्ञान में Poison का प्रयोग सामान्य विष के लिए होता है जो रासायनिक प्रतिक्रिया के कारण भी हो सकता है, किंतु Venom साँप, बिच्छु, बर्र, मधुमक्खी आदि जीवधारियों द्वारा उत्पन्न विष है और इसमें दो-तीन प्रकार के Toxin भी होते हैं। अतः Venom के लिए 'जीविष' या 'गरल' शब्द रखा गया है और Toxin के लिए 'आविष' रखा गया है।

निष्कर्ष

आज का युग मुख्यतः विज्ञान और प्रौद्योगिकी का युग है। विज्ञान के क्षेत्र में निरंतर शोध, अध्ययन और लेखन हो रहा है। इसी कारण अंग्रेज़ी और विश्व की अन्य विकसित भाषाओं में वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी साहित्य की रचना हो रही है। इस संदर्भ में हमें जागरूक होना है, किंतु हिंदी में विज्ञान संबंधी साहित्य का अभाव है। इसके अतिरिक्त विषय-विशेषज्ञों का अपनी भाषा पर अधिकार नहीं है और भाषा-विशेषज्ञों को तकनीकी विषयों की जानकारी नहीं है। हिंदी में इस साहित्य को लाने के लिए अनुवाद संबंधी समस्याओं के समाधान के लिए गंभीरता से चिंतन और मनन करना होगा। दोनों भाषाओं की संरचना और विषय संबंधी पारिभाषिक शब्दावली के ज्ञान के साथ-साथ उसकी अर्थवत्ता स्पष्ट रहेगी तो वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद उत्कृष्ट रूप ले पाएगा।

❑

Safdar Imam Umrani

Role of Adaptation in the World of Cinema

(with special reference to *Omkara*: Vishal Bhardwaj's Hindi Adaptation of *Othello)*

Adaptation is a form of translation. It refers to the changes that are introduced in a text while taking up the change over from one genre into another i.e. from novel into film, drama into film, comic books into films etc. An adaptation basically takes the ideas of the original text and rewrites them in a completely new way. The original text may be altered somewhat to appeal more to a new audience (i.e. different class or age group for example) or it may be placed in a different setting. While adapting a text one can choose to forgo literal meaning in favour of conveying a particular message or emotion, if one or the other is considered more important to the individual situation.

Now-a-days the art of adaptation i.e., Film Adaptation is being used by a number of film makers in the field of cinema. Film adaptation is the transfer of a written work to a feature film. A common form of film adaptation is the use of a novel, but film adaptation includes the use of non-fiction, autobiography, comic book scriptures, plays and even other films too. From the earliest days of cinema, adaptation has been nearly as common as the development of original screenplays. For the most part, these adaptations attempt either to appeal to an existing commercial audience (the adaptation of the best sellers and the "prestige" adaptation of works) or to tap into the innovation and novelty of a less well known author.

In Hollywood there are a number of instances of adaptations of various genres of literature being made into films e.g. Michael Crichton's novel

"Jurassic park" was turned by Steven Spielberg into one of the highest grossing films of all time, Francis Ford Copolla adapted Mario Puzo's novel "The Godfather" into one of the greatest movies in the history of cinema, Margaret Mitchell's novel "Gone With The Wind" was made into an academy award winner movie by Victor Fleming and these movies are regarded as the classic Hollywood movies. Besides all these classics, great films have been made on the novels like 'Alice in Wonderland', 'Catch 22', 'The Jungle Book', 'Pride and Prejudice', 'To Kill a Mocking Bird', 'No Country for Old Men', 'The Namesake', 'Wuthering Heights', 'Twilight', 'Shutter Island', 'Harry Porter Series', 'Q and A', '127 Hours', and the list continues. Filmmakers sometimes use plays as their sources too. William Shakespeare has been called as the most popular screenwriter in Hollywood. Not only there are film versions of almost all the Shakespeare's plays, but there are multiple versions of many of them, for instances 'Macbeth', 'Othello', 'Hamlet' and 'Henry[4].

In Bollywood too, the world famous literary works of the Bard of Avon have for decades inspired Bollywood films. Adapting Shakespeare's work to Indian ethos is the latest trend. The critically acclaimed movie "Maqbool" directed by Vishal Bhardwaj was inspired from "Macbeth". Another movie based on "Othello" named "Omkara" with the bad lands of Uttar Pradesh as background was made by the same director. Vishal Bhardwaj is not the first one to adapt Shakespeare. Vidhu Vinod Chopra's "Eklavya" is said to be an Indian period interpretation of "Hamlet". The prolific writer has been adapted earlier to Bollywood productions. Some Bollywood blockbusters, including "Qayamat se Qayamat Tak", were said to be inspired by "Romeo and Juliet". Likewise Gulzar's critically acclaimed film "Angoor" was based on the "Comedy of Errors".

In the past, many Bollywood filmmakers have made films inspired by books. This includes Satyajit Ray's "Apu Trilogy" based on Bibhutibhushan Bandhopadhyay's books, which was named among 100 best films in the world by "Time" magazine. As many as 17 Saratchandra Chattopadhyay's novels have been adapted into Hindi and Bengali films. Similarly Premchand's novels 'Shatranj ke Khiladi', 'Sadgati', 'Gaban', 'Godan' and 'Heera Moti' have been made into good films. R. K Narayan's novel "The Guide" was made into a highly successful film named "Guide". The trend of adapting various genres of literature restarted when the Hindi film trade reaped rich dividends from Saratchandra Chattopadhay's "Devdas". The global acclaim for the adapted version of Rabindranath Tagore's "Choker Bali" and the critical thumbs up to the Saratchandra Chattopadhya's "Parineeta : The Married Woman" has reaffirmed the directors' faith in

sourcing from literature. In fact the dearth of good scripts coupled with the audiences' raised expectations is the most fundamental reason for the trend to go back to the books. In addition to the above mentioned films, Pinjar, Maqbool, Black Friday, 1918 Benares: a love story, Sahib Biwi aur Gulam, Paheli, The Blue Umbrella, 7 Khoon Maaf, Raincoat, The Last Lear, Umraojaan, Aisha, Hello, Dev D, 3 Idiots etc. are films adapted from books. Sanjay Leela Bhansali's "Saawariya" too was based on Dostoevsky's novel "White Nights"and even Ashutosh Gowariker's "What's Your Rashee" is based on Madhu Raye's novel "Kimball Ravenswood".

In Hollywood, there are future film projects which are based on the literary works like 'One for the money', 'The Lorax', 'The Hunger Games', 'The Lucky One', 'Abraham Lincoln: Vampire Hunter', 'Life of Pi', 'Trishna' and 'Lord of the Rings: The Hobbit' authored by Janet Evanovich, Dr. Seuss, Suzanne Collins, Nicholas Sparks, Seth Grahame Smith, Yann Martel, Thomas Hardy and Stephinie Meyer respectively. In Bollywood too there are future film projects based on the literary works like '2 States', 'The Monk who sold his Ferrari', 'Little Women', and 'The Immortals of Meluha' written by Chetan Bhagat, Robin Sharma, Louisa May Alcott and Amish Tripathi respectively.

Despite of the fact that the art of adaptation is in common practice in the field of cinema and is widely used by the filmmakers as discussed above, yet there is a common presumption that "The book is always better than the movie". This presumption is widespread but it is less critical determination than a personal bias. A movie based on a literary source is often seen as a secondary work and, consequently, of second value. It is considered as a derivative work. It is a well-known fact that literature, generally, still occupies a more privileged position in the cultural hierarchy than movies do; and readers often have a proprietary attitude towards the book, an attitude that influences their reception of a film based on it. They often are disappointed when the movie does not match their concept of what they have read, not realizing that reading, itself, is an act of translation. Readers translate words into images and form strong, private, often vivid impressions of what it all means; words become translated into emotional experiences. When a film does not match with the reader's ideas, images, interpretations – even simple recall-of the book, the movie is deemed as deficient and disappointing, spawning the general impression that the movie just never is as good.

But this is not very true; sometimes the film is a flawed translation of the literature e.g. Teesri Kasam, What's your Rashee, Hello etc., but often the movie is arguably as good as book e.g. Maqbool, 7 Khoon Maaf,

Omkara etc., and on occasion even arguably better e.g. Devdas, The God father, Guide etc.

The first step in exploring the merits of literature based films is to see them as translations of the source material and to understand the difference between "adaptation" and "translation". While literature based films are often, customarily and understandably, referred to as adaptations, the term "to adapt" means to alter the structure or function of an entity so that it is better fitted to survive and multiply in its new environment. To adapt is to move that same entity into a new environment. In the process of adaptation, the same substantive entity, which entered the process, exists, even as it undergoes modification - sometimes radical mutation - in its efforts to accommodate itself into its new environment.

"To translate", in contrast to "to adapt", is to move a text from one language to another. It is a process of language, not a process of survival and generation. Through the process of translation a fully new text – a materially different entity – is made, one that simultaneously has a strong relationship with its original source, yet it is fully independent from it. In simple words one is able to read and to appreciate the translation without reading the original source. If one thinks of a literature-based film as a translation one will come to see that the filmmakers are moving the languages of literature-made up of words into the language of film. In doing so, they make choices from within film's syntax and vocabulary.

To think of a literature-based film as a translation of the original text is to understand that:

(1) Every act of translation is simultaneously an act of interpretation.
(2) Through the process of translation, a new text emerges – a unique entity – not a mutation of the original matter, but a fully new work, which, in form and in function, is independent from its literary source.
(3) Film translations of literature face the same challenges, dilemmas, interpretative choices, and responsibilities that any translator must face.

In short, in assessing the merits of any translation, faithfulness to the source text is the virtue most frequently requested, the quality most valued. However, the issue of faithfulness is a complex one. A translation cannot simultaneously replicate the resonating beauty of the language and its word for word meaning. The matter is further complicated by filmmaker and theorist Jean Luc Godard's position that originality is inevitable in all cinematic translations of literature. For Godard, an insistence on a filmmaker's fidelity to the literary source is based on a false assumption, i.e. that there is a core, stable text which the film can steadfastly translate,

instead of, as he believes, an infinite number ways of readings of any work. For Godard, originality invariably enters the moment someone begins reading the literature: and the unavoidably original way in which one reads a text affects how one translates the work into film.

There is a hierarchy of purpose and intent within the dynamics of translating. In the large and small decisions that attend the work of translating, each individual translator must determine what is most crucial, what is of secondary importance, and what is of least importance? Much like linguistic translations of literature, film translations are predicated on a hierarchy of purpose. Translators of literature into film confront the same hierarchy of purpose that all translators come up against. However, film more overtly – more boldly, perhaps – announces its translator's agenda.

Many film theorists have classified film translations of literature into any number of modes and practices. The antecedents of such attempts are in literary theory, the most pronounced of which is John Dryden's categorising translations into three types: line-by-line, paraphrasing, and imitation. Film theorists and writers as diverse as, Andre Bazin, Geoffrey Wagner, Dudley Andrew, and Louis Gianetti have written on the means and categorical modes by which literature is "adapted" to the screen.

Thus, while the first step in exploring the merits of literature-based films is to see them as translations of the source text, the second step is to understand that there are different, basic translation modes adopted by filmmakers whose source material is a literary text.

Similar to Dryden's categories, this text asserts that film fundamentally translates literature in three distinctive values, aims and ambitions, and each regards different features of the source text as most vital to preserve when translating the literature into film. These three translation modes are:

(1) **literal translation** which reproduces the plot and all its attending details as closely as possible to the letter of the book

(2) **traditional translation** which maintains that overall traits of the book (its plot, settings, and stylistic conventions) but revamps particular details in those particular ways that the filmmakers see as necessary and fitting

(3) **radical translation** which reshapes the book in extreme and revolutionary ways both as a means of interpreting the literature and of making the film a more fully independent work.

In assessing the merits of a literature-based film, an understanding of the three different translation modes is crucial because any evaluation must take into account the mode used in the making the film. It is an inappropriate for example, for a radical or traditional translation of a literal standard

(Hey…That's wrong! In the book she had blonde hair!). A working knowledge of these three types film translation is significant also because each of us needs to be aware of the biases – the intolerances and preferences – that we may have for one translation mode over another, as these biases could affect our appraisal of film's merits and deficiencies. Each of us needs to realize that no translation can transcribe every feature of the source text and that a hierarchy of values operates within any translation, including film translations of literature.

While the three translation modes occupy distinct categories, it is not unusual for a film to incorporate a combination of these approaches, for example, to include a radical sequence. However, the overall manner of any film translation of literature is predominantly accomplished in one of these three distinctive ways.

Omakara as an Adaptations of Shakespeare's *Othello*

Cast and Characters of *Omkara:*

Actor	Character in the Movie	Character in the Play
Ajay Devgan	Omkara 'Omi' Shukla	Othello
Kareena Kapoor	Dolly Mishra	Desdemona
Saif Ali Khan	Ishwar 'Langda' Tyagi	Iago
Vivek Oberai	Keshav 'Kesu Firangi' Upadhyaya	Cassio
Bipasha Basu	Billo Chamanbahar	Bianca
Konkana Sen	Indu	Emilia
Deepak Dobriyal	Rajan 'Rajju' Tiwari	Roderigo
Naseerudin Shah	Bhaisaab	Duke of Venice

"Omkara" is an Indian adaptation of Shakespeare's classic play "Othello" co-written and directed by Vishal Bhardwaj. Omkara is a "traditional translation" of Othello to, the violent world of rural Indian politics. The beauty of the adapted version lies in the fact that Omkara's characters are given names that either begins with the same letter as the original ones, or sounds like those names. The names orient the viewer into regional and caste identities of characters.

The tragedy of Othello, and hence the plot is quite familiar to most of the people round the globe. In Omkara, Bhardwaj stays true to the essential elements of the story i.e. morality, faith, doubt, love, betrayal, jealousy and deception, but transplants the action from Venice and Cyprus to a rural town of Uttar Pradesh in India. Instead of a dark and alienated Moorish general among Italians, Othello is now Omkara, a half-caste gangster in the employ of the local leader/parliamentary candidate Bhai-saab. In the riveting opening sequence, Omkara's men break up the wedding

of his beloved Dolly to the hapless Rajju, and then face a tense gunpoint confrontation with Dolly's angry father. Though Omkara and Dolly are truly in love, he is stung by the parting words of her bitter father, which echo Shakespeare's "Look to her, Moor, if thou hast eyes to see: She has deceived her father, and may thee" (*Othello*, I, iii).

Meanwhile, as Omkara's status rises in the wake of Bhaisaab's release from prison, he must choose a replacement leader from among his lieutenants. Portentously, he elevates carefree student-leader Kesu over hardened brigand Langda. Langda is not pleased, and hatches a nefarious scheme to turn Omkara against Kesu and Dolly by convincing him that they are having an affair. Omkara, though a fierce warrior, is not experienced in love and, as in the original play, ill-served by his ability to judge character. Langda weaves a web of trickery, enlisting the unwitting aid of Kesu and his lover, the dancer Billo, Rajju, and Dolly, as well as his own wife Indu. While some minor characters suffer different fates, the essential elements of the original story are all intact as the plot moves to its preordained conclusion.

The film Omkara, in its adaptation of Shakespeare's *Othello* remains true to the play while also changing many aspects to create the differences between the two. One of the ways in which Omkara departs from *Othello* is through deliberately taking Iago, the evil character in *Othello,* and transforming him into the more human, and less villainous, character of Langda. Bhardwaj achieves this in two ways. One is by creating certain scenes in the film, which allow the audience to sympathize with Langda or at least understand his view points. Another is by removing or muting many aspects, which show up in *Othello,* which portray Iago as a cunning scheming villain.

The other major changes done in the adapted version is that Bhardwaj transforms its main protagonist Omkara into a God father type character belonging to the crime genre that dominates the Bollywood scenario now. Bhardwaj replaces the issue of "race" of the original work in his adaptation with the other kinds of issues that mark the contemporary post-colonial milieu in India: problems and crime related to caste warfare and the violence against women that remains at the centre of these crimes, along with lawlessness, clan rivalry, and political deceit. He intentionally does this replacement in order to make the Shakespearean play speak for India's local ethos.

Another major change done by the Director in the film is that he replaces the object of doubt, rage and jealousy in the original i.e. the handkerchief, which *Othello* gives to Desdemona as a token of love, with a large-waist ornament, called *kamarbandh* which plays an important part

in the plot, as evidence of Dolly's infidelity. This change has been done deliberately in order to suit the film's setting and to establish the ornament's association with the culture, customs and practices of the area in which the story has been set up.

In addition to the above mentioned major changes done in the film, many other minor changes have been made in the adapted version. These changes have been done in order to associate and link the characters with the cultural milieu of the area where the film has been set up.

Conclusion:

In conclusion, I would say that the filmmakers all over the world use the art of adaptation for making films and it is in very common practice now-a-days. Hundreds of the movies released every year throughout the world are adaptations of the literary works. In today's era of globalization the importance of translation is increasing day by day. As adaptation is a form of translation, therefore, its relevance and importance is simultaneously rising too. The scholars associated directly or indirectly in the act of translation must bear the fact in their minds that the field of translation as well as adaptation has ample opportunities, which have not been explored yet, but they need to be explored.

❑

References:

Baker, Mona. Saldanha, Gabriela. Routledge Encyclopaedia of Translation Studies. London: Routledge, 1998.

Pechter, Edward. Ed. *Othello*. New York: Norton, 2004.

Costanzo Cahir, Linda. Literature into Film: Theory and Practical Approaches, McFarland & Company. North Carolina, 2006

महावीर प्रसाद भारद्वाज

विधेयकों का हिंदी अनुवाद

देश के शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए संसद द्वारा कानून बनाए जाते हैं, जिन्हें अधिनियम या एक्ट कहते हैं। अधिनियम के प्रारूप को (जो संसद की दोनों सभाओं में से किसी भी सभा में विचार तथा पारण के लिए पुर-स्थापित किया जाता है) विधेयक का बिल कहते हैं।

विधेयक सरकारी या गैर-सरकारी होते हैं। सरकारी विधेयक को सरकार के किसी मंत्री द्वारा पुर-स्थापित किया जाता है। गैर-सरकारी विधेयक किसी भी संसद सदस्य द्वारा पुरःस्थापित किया जा सकता है, चाहे वह सत्ता पक्ष से संबद्ध हो या विपक्ष से हो।

विधेयकों का हिंदी अनुवाद

भारत की राजभाषा हिंदी होने के बावजूद विधेयक प्रायः मूल रूप से अंग्रेजी में प्रारूपित किए जाते हैं। उसके बाद, राजभाषा अधिनियम के अनुपालनार्थ उनका हिंदी अनुवाद तैयार किया जाता है। यह कार्य विधि मंत्रालय के राजभाषा स्कंध, लोक सभा सचिवालय अथवा राज्य सभा सचिवालय में किया जाता है।

विधेयक का अनुवाद विधिक श्रेणी में रखा जाता है, जिसमें अनेक सावधनियाँ बरतनी पड़ती है तथा पृष्ठभूमि संबंधी अनेक ब्यौरों एवं अर्थ संबंधी बारीकियों पर ध्यान देना होता है। इसलिए यह कार्य सुयोग्य तथा पारंगत अनुवादकों को सौंपा जाता है।

यह इत्मिनान से किया जाने वाला कार्य है। विधेयक में शामिल प्रत्येक शीर्षक, परिभाषा, खंड, उपखंड, परंतुक आदि अपने आप में पूर्ण वैचारिक इकाई होते हैं। इन्हें समग्र रूप में समझने के लिए अनुवादक को समुचित संकल्पनात्मक तथा वैचारिक प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। भली प्रकार से समझने के बाद स्रोत भाषा में तैयार विधेयक को यथासंभव सरल एवं सुसंगत रूप में लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करना होता है। यह समय-साध्य,

धैर्य-साध्य तथा मनोयोग-साध्य कार्य है। इसलिए इनका अनुवाद करते समय पर्याप्त समय दिया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, इस कार्य में जल्दबाजी नहीं की जानी चाहिए।

विधेयक की अनुवाद प्रक्रिया

आइए अब हम विधेयक की अनुवाद प्रक्रिया पर विचार करें। इस संदर्भ में यह विचारणीय है कि विधेयक का अनुवाद करते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए और कौन-सी प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए। वैसे इस संबंध में निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाई जा सकती है :

1. विधेयक का पठन तथा बोध

विधेयक का अनुवाद आरंभ करने से पूर्व उसे धैर्यपूर्वक और अच्छी तरह से पढ़ लिया जाना चाहिए। पढ़ते समय यदि निम्नलिखित क्रम को ध्यान में रखा जाए तो विधेयक को समझने तथा उसका अनुवाद करने में आसानी होगी :

सर्वप्रथम विधेयक का नाम 'संक्षिप्त नाम' (शार्ट टाइटल) जो मोटे अक्षरों में दिया जाता है, तथा उसके बाद 'विस्तृत नाम' (लांग टाइटल – जो संक्षिप्त नाम के नीचे ही दिया होता है) पढ़ना चाहिए। विस्तृत नाम में विधेयक का प्रयोजन सार रूप में बताया होता है।

तत्पश्चात् अनुवाद की दृष्टि से, विधेयक के सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंश अर्थात् 'उद्देश्यों एवं कारणों का कथन (स्टेटमेंट ऑफ ऑब्जेक्ट्स एंड रीजंस)' पढ़ा जाना चाहिए, जो विधेयक के अंत में दिया गया होता है। इसे विधेयक की आत्मा कहा जा सकता है। इस अंश में विधेयक के उद्देश्य, उसे लाने के कारण, आवश्यकता, औचित्य, परिधि आदि को सम्यक् पृष्ठभूमि के साथ बताया जाता है। विधेयक के मर्म को समझने और उस तक पहुँचने के लिए इसे एकाधिक बार पढ़ने की आवश्यकता होती है।

तत्पश्चात् विधेयक को आद्योपांत पढ़ना चाहिए। विभिन्न खंडों-उपखंडों को पढ़ने से पहले हाशिए में दिए गए उनके शीर्षकों को पढ़ना चाहिए। इससे उनके केंद्रीय भाव तक पहुँचने में आसानी होगी।

इस क्रम में पढ़ने से विधेयक को समझना आसान हो जाता है। विधेयक को भली-भाँति पढ़ने के पश्चात् ही अनुवाद कार्य शुरू करना चाहिए।

2. हिंदी अनूदित विधेयक का प्रारूप तथा स्थान प्रबंध, मूल (अंग्रेजी) विधेयक के प्रारूप अनुसार रहे

अनुवादक को चाहिए कि वह अनुवाद करते समय पृष्ठ पर उपलब्ध स्थान का प्रबंध मूल (अंग्रेजी) विधेयक की प्रारूप योजना के अनुसार अनुवाद करता चले, जिससे

विधेयक के शीर्षकों, खंडों, उपखंडों, अनुच्छेदों, कोटिसूचक तथा क्रमसूचक अंकों एवं अक्षरों की सुभिन्नता स्पष्ट रूप से उजागर हो जाए। हाशिया दोनों ओर छोड़ा जाए। दो पंक्तियों के बीच पर्याप्त स्थान छोड़ा जाए। अनुच्छेद आदि का सुस्पष्ट रूप से पता लगना चाहिए। दो खंडों-उपखंडों के बीच पर्याप्त स्थान छोड़ा जाए। इससे जाँचकर्ता, मिलानकर्ता तथा टंकक आदि सभी को आसानी होगी।

3. सभी विधेयक में प्रायः मिलते-जुलते अंशों का अनुवाद

विधेयक के कई अंश सभी विधेयकों में प्रायः मिलते-जुलते होते हैं, जैसे आरंभ में 'अधिनियमन सूत्र', 'खंड-1', विधेयक के अंत में दिए जाने वाले 'वित्तीय ज्ञापन' तथा 'प्रत्यायोजित विधान संबंधी ज्ञापन', 'विधेयक का वर्ष तथा क्रमांक', 'लोकसभा/राज्यसभा में पुरःस्थापित रूप में', 'लोकसभा/राज्यसभा में पारित रूप में' तथा अंतिम पृष्ठ की इबारतें आदि। इनका अनुवाद हिंदी में अनूदित किसी विधेयक को देखकर और यथावश्यक संशोधन करते हुए कर देना चाहिए। इससे विधेयकों के हिंदी में एकरूपता को सुनिश्चित किया जा सकेगा।

4. विधेयक के मुख्य भाग का अनुवाद

विधेयक के मुख्य भाग के अनुवाद में सबसे अधिक ध्यान भाषा पर रखना होता है। भाषा बोधगम्य होनी चाहिए। बोधगम्य भाषा के अंतर्गत मुख्यतः दो बातें आती हैं – एक सरल तथा सुलझी हुई वाक्य रचना; और दूसरी प्रामणिक तथा अभिनिश्चित शब्दावली।

अनूदित पाठ की वाक्य रचना ऐसी होनी चाहिए, जिससे वाक्य में निहित वैचारिक इकाई को समग्र तथा स्पष्ट रूप में समझा जा सके। जटिल और भ्रमोत्पादक वाक्य रचना से बचा जाना चाहिए।

इसी प्रकार, शब्दावली ऐसी होनी चाहिए जिससे सही, निश्चित तथा एक ही अर्थ निकाला जाए। हिंदी समानकों का प्रयोग करने से पहले उनके अर्थ, लिंग, वचन, वर्तनी आदि की प्रामाणिकता को शब्दकोशों तथा पारिभाषिक शब्दावलियों की मदद से अभिनिश्चित कर लेना चाहिए। पारिभाषिक शब्दों के लिए मुख्य रूप से विधि मंत्रालय के राजभाषा विधायी खंड द्वारा तैयार की गई विधि शब्दावली की सहायता ली जाती है, क्योंकि कानून की भाषा के अधिकांश हिंदी अनूदित नमूने उसमें मिल जाते हैं और उन्हें अन्यत्र खोज करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

5. आँकड़ों का सुनिश्चयन

विधेयकों के अनुवाद में संख्याओं/आँकड़ों के बारे में एकाधिक बार सुनिश्चित करना

चाहिए। आँकड़ों के अंकों के अनुवाद की तो आवश्कता नहीं होती, किंतु अंकों को मूल से अनुवाद में हूबहू पहुँचा देना भी महत्वपूर्ण कार्य है। वजह यह है कि ध्यान प्रमुखतः भाषा पर रहता है और अंकों/आँकड़ों के प्रति असावधानी बरती जा सकती है। इस प्रकार कई बार आँकड़ों की बड़ी भूल हो जाती है। अतः आँकड़ों के हूबहू मिलान को विधेयक के अनुवाद का मुख्य जाँच-बिंदु बनाया जाना चाहिए। 'मिलियन' आदि अंतरराष्ट्रीय संख्यांकन प्रणाली में दिए गए आँकड़ों को हिंदी-अरबी आँकड़ों अर्थात् लाख-करोड़ आदि के रूप में अनूदित किया जाना चाहिए।

6. सर्वांगपूर्णता का सुनिश्चियन

विधेयक का अनुवाद पूरा हो जाने पर उसकी सर्वांगपूर्णता को सुनिश्चित किया जाना चाहिए। अनूदित विधेयक सर्वांगपूर्ण हो, उसका कोई अंश छूट न गया हो। इसके लिए सावधानीपूर्वक मिलान किया जाना चाहिए। अनूदित विधेयक का (अंग्रेजी मूल से) कम से कम दो बार मिलान वांछनीय है।

7. जाँच बिंदु

अंत में कहा जा सकता है कि अनूदित विधेयक को निम्नलिखित जाँच-बिंदुओं की कसौटी पर खरा होना चाहिए – (क) अनूदित विधेयक का स्थान प्रबंध मूल अंग्रेजी विधेयक की प्रारूप योजना के अनुसार हो (ख) बोधगम्य भाषा (ग) अभिनिश्चित शब्दावली (घ) वर्तनी की शुद्धता; और (ङ) आँकड़ों की शुद्धता।

❑

रमेश चंद्र

कोशकार डॉ. रघुवीर

हिंदी पारिभाषिक शब्दावली के क्षेत्र में डॉ. रघुवीर ने शुद्धतावादी या राष्ट्रीयतावादी विचारधारा का प्रवर्तन एवं पोषण किया। शुद्धतावादी या राष्ट्रीयतावादी विचारधारा के अनुसार संस्कृत धातुओं में उपसर्ग, प्रत्यय के योग और समास विधि से हजारों-लाखों समतुल्य हिंदी पारिभाषिक शब्द बनाए जा सकते हैं। उन्होंने हर पारिभाषिक शब्द के लिए संस्कृत व्याकरण के नियमों के आधार धातु, प्रत्यय और उपसर्ग आदि को मिलाकर अनेक नए शब्दों का निर्माण किया और पुराने शब्दों का जीर्णोद्धार किया। उनका मानना था कि 600 धातुओं, 80 प्रत्यय और 20 उपसर्ग तथा 107 संयुक्त उपसर्गों का प्रयोग करके लाखों शब्द बनाए जा सकते हैं। इसी आधार पर उन्होंने निम्नलिखित सिद्धांतों का पालन किया :

1. हिंदी का अनूदित शब्द अर्थवान होना चाहिए यानी अंग्रेजी के शब्द का अनुवाद भारतीय भाषा अथवा हिंदी में सार्थक होना चाहिए।
2. अंग्रेजी की प्रत्येक अर्थ छाया के लिए हिंदी भाषा में भी नया शब्द होना चाहिए।
3. अंग्रेजी के असमस्त शब्द का अनुवाद यथासंभव असमस्त शब्द से ही होना चाहिए। अंग्रेजी में एक शब्द है तो उसका अनुवाद भी हिंदी में एक शब्द से ही होना चाहिए।
4. अंग्रेजी भाषा से शब्द लेने के स्थान पर संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भारतीय भाषाओं को प्राथमिकता दी जाए।
5. यदि शब्द प्रचलित न हो तो संस्कृत रूपों के आधार पर नए शब्दों की रचना की जाए।
6. संस्कृत के शब्दों से घटक ग्रहण करने की प्रक्रिया अपनाई जाए और शब्द रचना में उसका प्रयोग किया जाए।

वास्तव में डॉ. रघुवीर में परंपरागत तथा आधुनिक दोनों प्रकार की उच्च शिक्षा का अद्‌भुत सम्मिश्रण था। वे प्रकांड पंडित तथा धुरंधर वैयाकरण थे। उन्होंने संस्कृत की अधिकांश विधाओं का अध्ययन किया था। उन्होंने प्रशासनिक तथा वैज्ञानिक दोनों ही क्षेत्रों में पारिभाषिक शब्दों की रचना की। उदाहरण के तौर पर प्रशासन से संबंधित निम्नलिखित प्रशासनिक शब्दावली देखिए :

Secretary	–	सचिव
Additional Secretary	–	अपर सचिव
Deputy Secretary	–	प्रति सचिव
Under Secretary	–	अवर सचिव
Registration	–	पंजीकरण
Parliament	–	संसद
Legislative assembly	–	विधान सभा

वैज्ञानिक शब्दों की रचना के लिए उन्होंने वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत आधार अपनाया। रसायन विज्ञान में पुरातन भारतीय शब्द प्रयोग किए। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पारिभाषिक शब्द एवं उनके हिंदी पर्याय देखिए :

Argentums	–	रजत
Cuprum	–	ताम्र
Palma	–	सीसा
Stannum	–	त्रपु
Stibium	–	अंजन

इसी प्रकार, डॉ. रघुवीर ने पारिभाषिक शब्दों को कुछ प्राचीन तथा सुविदित नाम भी दिए। उदाहरण के तौर पर :

Boron	–	टाँकण (टंकण से टाँकण)
Cartoon	–	आंगार (अंगार से आंगार)
Zine	–	कुप्यातु (कुप्य से कुप्यातु)
Silicon	–	सैकता (सिकता से सैकता)

डॉ. रघुवीर ने अंग्रेजी के 'An' या 'a' के लिए हिंदी में क्रमशः 'अ' और 'अन' उपसर्ग का प्रयोग करके पारिभाषिक शब्द निर्मित किए। उदाहरण के लिए उन्होंने Anlydride – अजलेय (अ + जलेय) शब्द बनाया।

इसी प्रकार, 'Anti' उपसर्ग के लिए डॉ. रघुवीर ने 'प्रति' शब्द का इस्तेमाल किया। जैसे, Antioxidant के लिए प्रतिजारणकर्ता (प्रति + जारणकर्ता)। उन्होंने 'Hypo' के लिए

'उप' का इस्तेमाल करके 'Hypochlonite' के लिए 'उपनीरित' तथा 'Super' के लिए 'आधि' का प्रयोग करके 'Supereated' – 'आधितप्त' शब्द बनाया।

डॉ. रघुवीर ने वनस्पति विज्ञान में सरलतापूर्वक पहचान के लिए आयुर्वेद के अनेक उत्कृष्ट शब्दों की रचना की। जैसे :

Ampelidere	–	द्राक्षाकुल
Rutaneear	–	निंबुकुल
Magnoliaeear	–	चंपककुल
Santalaeear	–	चंदनकुल
Zygophgllacear	–	गोक्षुरकुल

इसी प्रकार, उन्होंने जीवविज्ञान के लिए वेदों से लेकर जैन ग्रंथों तक के अनेक शब्दों को खोजा और भिन्न जातियों को अलग-अलग नाम दिए। उदाहरण के लिए, निम्नलिखित पारिभाषिक शब्द देखिए :

Order	–	गण
Genus	–	प्रजाति
Family	–	वंश
Sub family	–	अनुवंश

उदाहरणार्थ – 'हंस' का जीववैज्ञानिक वर्गीकरण करें तो वह इस प्रकार होगा :

Order	– Anseres	–	(हंस गण) (गण)
Family	– Antiad	–	(हंसवंश) (वंश)
Sub Family	– Anserinal	–	(हंसानुवंश) (अनुवंश)
Genus	– Anser	–	(हंस) (प्रजाति)
Anser crythopus		–	एकपाद हंस।

उन्होंने संस्कृत के अनेक पुराने शब्दों का प्रयोग करते हुए पक्षीविज्ञान से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण शब्द भी बनाए। उदाहरण के तौर पर निम्नलिखित पारिभाषिक शब्द और उनके हिंदी पर्याय देखिए :

Hefrophasa	–	दीर्घपुच्छ
Batreacho	–	भेकमुख
Certhia	–	वृक्षसर्पी
Zosterope	–	सितनयन
Panther	–	पुंडरीक
Ovis	–	अवि

डॉ. रघुवीर ने संस्कृत पृष्ठभूमि पर आधारित आधुनिक भारतीय भाषाओं से भी शब्दों

की भी रचना की। जैसे, गैंडा से गंडक।

Rhinoeeros — गंडक प्रजाति।

पुरानाम प्रदान करते हुए एवं लैटिन भाषा के भिन्न-भिन्न लक्षणों का अनुवाद दर्शाने वाले सुनाम के रूप में प्राप्त होते हैं। जैसे :

Anthnrmoepha — नररूप

Megoderma — विशालपत्र

Jetracersus — चतुःश्रृंग

इन सुनामों से अधिक स्पष्ट और उपयुक्त शब्द बनाए गए हैं :

Palm Civets — तरूपूतीक

Cervis — महाभृग

Cervalus — क्षुद्रभृग

Phystacocoeti — अंदततिमि

Odrntocietc — सदंततिमि

ये शब्द अपने आप में सुस्पष्ट हैं तथा निहित भ्रांति एवं यूरोपीय नाम पद्धति में आने वाली त्रुटियों को दूर करते हैं।

डॉ. रघुवीर ने अपने 'बृहत अंग्रेजी-हिंदी कोश' के संकलन और संपादन में कड़ा परिश्रम, भाषाई पांडित्य, ज्ञान और चिंतन का प्रयोग किया। परंतु उनकी विचारधारा से पारिभाषिक शब्द निर्माण करने की विधि की अनेक लोगों ने कटु आलोचना की और प्रायः यह आरोप लगाया कि इस प्रकार से बने शब्द बहुत क्लिष्ट और अप्राकृतिक हैं।

इसके अलावा, डॉ. रघुवीर द्वारा निर्धारित पारिभाषिक शब्दों में भाषावैज्ञानिक दृष्टि से भी दोष निकाले गए। प्रो. सूरजभान सिंह के शब्दों में ''डॉ. रघुवीर के प्रयास से यह भले ही सिद्ध हो गया कि संस्कृत की शब्द निर्माण क्षमता असीमित है। पर इससे यह भी सिद्ध हो गया कि शब्द की सार्थकता उसके प्रयोग में है न कि उसके शब्द निर्माण सौष्ठव में।'' डॉ. रघुवीर प्रयोगसिद्धता का यह मूलभूत सिद्धांत नजरअंदाज कर गए। दूसरे, मौलिक संकल्पना के लिए पहली बार नए शब्द का आविष्कार करते समय भले ही शब्द निर्माण प्रक्रिया का व्याकरणिक सौष्ठव महत्वपूर्ण हो, लेकिन पूर्व-प्रचलित शब्दों के स्थान पर नए शब्दों का विधान करते समय प्रायः प्रयोगसिद्ध व्यावहारिकता और सामाजिक ग्राह्यता के नियम शब्द निर्माण के नियमों से अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। शब्द निर्माण और पर्याय निर्माण में यही भेद है। मौलिक शब्द-निर्माण के विपरीत, पर्याय निर्माण में प्रायः किसी एक भाषा का शब्द पहले से ही मौजूद होता है और

कमोबेश मात्रा में उस भाषा-समाज में पूर्व-प्रचलित भी हो सकता है। यही कारण है कि अतिशुद्धतावादी विचारधारा के विरुद्ध देश में तत्काल तीव्र प्रतिक्रिया हुई और स्वयं केंद्र सरकार ने इससे अपना मतभेद व्यक्त किया।

दूसरा आरोप यह था कि ये शब्द प्रचलित नहीं होंगे। तीसरा आरोप यह लगाया गया कि इन संस्कृतनिष्ठ शब्दों के निर्माण में डॉ. रघुवीर ने भिन्न-भिन्न सिद्धांतों का पालन किया।

परंतु वास्तविकता यह है कि पारिभाषिक शब्द सामान्य बोलचाल के शब्द नहीं होते, ये ज्ञान-विज्ञान की अवधारणाओं का संकेत करने वाले होते हैं। इसलिए ये सरल हो ही नहीं सकते। इसे उस भाषा तथा विषय-विशेष को जानने वाला ही समझ सकता है। डॉ. रघुवीर ने कहा भी है ''विधा नीचे उतर कर नहीं आएगी। जनता का ज्ञान ऊँचा उठेगा। विज्ञान का अनुवाद कभी बोलचाल की भाषा में नहीं हो सकता है।'' यह स्थिति हिंदी के पारिभाषिक शब्दों के साथ ही नहीं, अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्दों के साथ भी है। अतः डॉ. रघुवीर द्वारा निर्मित शब्द केवल संस्कृतनिष्ठ होने के कारण ही क्लिष्ट हो गए, यह तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता।

वास्तव में डॉ. रघुवीर में पारंपरिक और आधुनिक, दोनों प्रकार की उच्च शिक्षा का अद्‌भुत मिश्रण था। वे प्रकांड पंडित तथा धुरंधर वैयाकरण थे। निष्पक्ष भाव से डॉ. रघुवीर के कार्य का अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि उन्होंने हिंदी भाषा को पारिभाषिक शब्द निर्माण में एक मौलिक अंतर्दृष्टि प्रदान की। यह संभव है उनके कार्य में कुछ त्रुटियाँ रह गई हों अथवा कुछ अतिवाद हों। फिर भी उनका कार्य पारिभाषिक शब्द निर्माण के क्षेत्र में मील का पत्थर है।

❑

डॉ. तुकाराम दौड

हिंदी भाषा के विकास में बी.बी.सी. का योगदान

विश्व में बी.बी.सी. दुनिया का सबसे बड़ा संस्थान है। स्वतंत्रता पूर्वकाल में बी.बी.सी. ने हिंदी सेवा का विस्तार किया। भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी मानवीय चेतना का विषय है। बी.बी.सी. के इतिहास में हिंदी सेवा और पत्रकारिता महत्वपूर्ण मानी जाती है। भारत के राष्ट्रीय विकास के साथ-साथ सामाजिक उत्थान और परिवर्तन में इसकी हिंदी सेवा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है; हिंदी को अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रस्तुत करने का कार्य किया है। ज्ञान-सृजन तथा सूचना प्रसारण की एक वैकल्पिक भाषा के रूप में भी हिंदी को बी.बी.सी. ने स्वीकार किया। पिछले नब्बे साल से अपनी पत्रकारिता और समाचार तथा अनुसंधान की गुणवत्ता के कारण राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बी. बी.सी. की ख्याति बढ़ी है। भारत की भावनाओं एवं विचारों की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में बी.बी.सी. ने हिंदी भाषा के विकास में योगदान दिया है। भाषाई आदान-प्रदान के समन्वय के लिए बी.बी.सी. हिंदी भाषा का एक अंतरराष्ट्रीय मंच सिद्ध हुआ है।

बी.बी.सी. की पृष्ठभूमि

विश्व में बी.बी.सी. का विस्तार हुआ है। ''बी.बी.सी. वर्ल्ड सर्विस दुनिया का सबसे बड़ा अंतरराष्ट्रीय संस्थान है।''[1] माना जाता है कि सारी दुनिया में बी.बी.सी. का प्रसारण ब्रिटिश साम्राज्यकाल से चला आ रहा है। ''बी.बी.सी. की स्थापना सन् 1922 में ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कंपनी के रूप में की गई।''[2] सूचना प्रौद्योगिकी के युग में बी.बी.सी. का प्रसारण क्षेत्र में मुक्तेदारी वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समाप्त हो गई है।

''सन् 1904 में डी फॉरेस्ट ने रेडियो ट्यूब का ज्ञान कराया। इसके आधार पर रेडियो का आविष्कार हुआ।''[3] जोकि सूचना संचार के इतिहास में एक क्रांतिकारी घटना थी। रेडियो जनसंचार का मीडिया है। ''इटली के मारकेस गुगलीमो मारकोनी ने 2 जून,

1893 को अपनी खोज वायरलेस टेलीग्राफी का पेटेंट प्राप्त कर लिया।''[4] मारकोनी के रेडियो के आविष्कार के बाद प्रसारण क्षेत्र में क्रांति हुई और बी.बी.सी. ने सारी दुनिया में रेडियो कार्यक्रमों का प्रसारण किया। आज बी.बी.सी. के अनेक चैनल चौबीस घंटे कार्यरत हैं। बी.बी.सी. की विश्वविख्यात छवि अनुपमेय है। ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कार्पोरेशन का मुख्यालय लंदन में है। ''पिटर्सबर्ग (यू.एस.ए.) में सन् 1920 ई. में प्रसारण केंद्र स्थापित हुआ। किंतु 23 फरवरी, 1920 को चेम्सफोर्ड से मारकोनी कंपनी ने सर्वश्रेष्ठ रेडियो कार्यक्रम प्रसारित किया। प्रसारण का नियमित स्वरूप जॉनरिथ के निर्देशन में बी.बी.सी. द्वारा नवंबर 1920 में निर्धारित एवं प्रसारित हुआ।''[5] बी.बी.सी. संस्थान का निगम के रूप में विकास हुआ। सुरक्षा, शिक्षा और मनोरंजन के अपने त्रिआयामी उद्देश्य को लेकर 'दिस इज व्हाट वी डू' (This is what we do), 'नेशन शैल स्पीक यू.एन. टु नेशन' (Nation shall speak UN to Nation) की भावना सामने रखकर बी.बी.सी. रेडियो ने अपने कार्यक्रमों का प्रसारण किया और स्वायत्तशासी निगम के नियंत्रण में बी.बी.सी. रेडियो और बी.बी.सी. टेलीविजन का प्रसारण चलता है।

बी.बी.सी. रेडियो का विश्व की 38 भाषाओं में प्रसारण निरंतर होता है। दक्षिण एशियाई भाषाई सेवाओं का संचलन पूरी तरह से बी.बी.सी. वर्ल्ड सर्विस द्वारा किया जाता है। ''बी.बी.सी. लाइसेंस 2014 ई. में अनिवार्य होगा, जो ब्रिटेन के टेलीविजन पर प्रसारित कार्यक्रमों को देखने के लिए लाइसेंस अनिवार्य होगा। बी.बी.सी. वर्ल्ड सर्विस रेडियो अकादमिक संरक्षण है।''[6] बी.बी.सी. वर्ल्ड नेटवर्क के सारी दुनिया में बड़ी संख्या में श्रोता हैं और समाचारों में बी.बी.सी. प्रबंधन की विश्वसनीयता लक्षणीय है। व्यावसायिक स्पर्धा बढ़ाने की वजह से बी.बी.सी. ने इंटरनेट सेवाएँ शुरू की हैं। इन सेवाओं में अन्य भाषाओं में वेब रेडियो, वेब टेलीविजन शामिल की है। ''इंग्लैंड में दूरदर्शन के आने पर जब बी.बी.सी. को सुनना एकदम कम हो गया तो डॉयरेक्टर्स की बैठक हुई, जिसमें निर्णय लिया गया कि आकाशवाणी के कार्यक्रमों को इतना आकर्षक मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक बनाया जाए कि लोग उसे सुनने के लिए सदैव आतुर रहें। इस निर्णय पर अमल किया गया तथा बी.बी.सी. की प्रतिष्ठा ज्यों की त्यों बनी रही।''[7]

बी.बी.सी. हिंदी सेवा

ब्रिटिश द्वारा भारत में रेडियो प्रसारण की शुरुआत सामाजिक कार्य के तौर पर हुई थी। कुछ व्यापारियों ने इसे वाणिज्यिक गतिविधि के तौर पर आगे बढ़ाने की कोशिश की। ''23 जुलाई, 1927 को देश के प्रथम प्रसारण केंद्र का उद्घाटन बंबई में करते हुए भारत के तत्कालीन वायसरॉय लॉर्ड इर्विन ने कहा था कि इसकी दूरी तथा व्यापक क्षेत्र इसके लिए पर्याप्त संभावना प्रदान करते हैं।''[8] विकासशील राष्ट्रों में भारत पहला

देश है जिसने रेडियो प्रसारण शुरू किया और ब्रिटिश साम्राज्य में निजी रेडियो का उदय हुआ। ''1927 में कोलकाता, बंबई, चैन्नई और लाहौर में रेडियो क्लब बने। इंडियन ब्रॉडकास्टिंग कंपनी (आई.बी.सी.) बनाई गई।''[9] ये कार्यक्रम मारकोनी कंपनी द्वारा प्राप्त ट्रांसमीटर से प्रसारित होते थे। आई.बी.सी. को घाटा हुआ। तीन साल बाद यह सेवा बंद कर दी गई। ''1930 में भारत में ब्रिटिश शासन ने इंडियन स्टेट ब्रॉडकास्टिंग सेवा शुरू की।''[10] बाद में इसका नाम बदलकर ऑल इंडिया रेडियो (ए.आई.आर) रखा गया। दूसरे महायुद्ध में इसका विदेश सेवा विभाग खुला। महायुद्ध के समय एशियाई राष्ट्रों में ब्रिटेन का प्रभाव निर्माण करने के लिए बी.बी.सी. ने रेडियो सेवाओं का विस्तार किया। ''3 जनवरी, 1938 को पहली विदेशी भाषा सेवा अरबी में शुरू की गई। जर्मन भाषा में प्रसारण दूसरा विश्वयुद्ध शुरू होने के कुछ ही पहले शुरू हुआ और 1942 के अंत तक सभी प्रमुख भाषाओं में प्रसारण होने लगे। नवंबर 1939 में इंपायर सर्विस का नाम ओवरसीज रखा गया और एक समर्पित बी.बी.सी. यूरोपीय सेवा 1941 में जोड़ी गई। इन प्रसारण सेवाओं का वित्त-पोषण घरेलू लाइसेंस शुल्क से नहीं, सरकार की आर्थिक अनुदान सहायता विदेशी विभाग के बजट से होता था। प्रशासकीय रूप से इसे एक्सटर्नल सर्विसेस ऑफ द बी.बी.सी. के रूप में जाना जाता था।''[11]

द्वितीय महायुद्ध के बाद अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बी.बी.सी. के समाचार को विशेष जगह मिली है। सारी दुनिया में बी.बी.सी. समाचार बड़े विश्वसनीय माने जाते हैं और बी.बी.सी. की हिंदी सेवा महत्वपूर्ण मानी जाती है। डॉ. कृष्ण कुमार रत्तू के अनुसार ''भारत सरकार अधिनियम 1935 में प्रसारण के कानून का प्रावधान था तथा अलग-अलग प्रदेश अपनी निजी प्रसारण केंद्र रखते थे और प्रसारण में हस्तक्षेप भी होता रहता था। किंतु भारतीय वायरलेस अधिनियम सार्वजनिक संपत्ति द्वारा संचार के लिए मना ही करते थे।''[12] ब्रिटेन में बी.बी.सी. प्रसारण संस्थान स्वायत्त था। ''सन् 1947 में आजादी के समय हमारे यहाँ कुल 6 रेडियो स्टेशन काम कर रहे थे। मुंबई, कोलकाता, दिल्ली, चैन्नई, लखनऊ, चंडीगढ़ बाकी पाकिस्तान में गए।''[13] आज रेडियो स्टेशनों की संख्या बढ़कर 200 से ऊपर हो गई है। सन् 1956 तक भारत में रेडियो सिलोन (श्रीलंका रेडियो) काफी लोकप्रिय था। लेकिन सन् 1956 में विविध भारती के आगमन पर भारतीय श्रोताओं ने रेडियो सिलोन सुनना बंद कर दिया। लेकिन बी.बी.सी. रेडियो ने भारतीय आकाशवाणी को स्पर्धा करनी पड़ी। ''ब्रिटेन में बी.बी.सी. का संचार एक अशासकीय स्वामित्व वाला है। भारत में आकाशवाणी पूरी तरह से प्रसार भारती के नियंत्रण में है।''[14]

हिंदी भाषा के विकास में बी.बी.सी. हिंदी सेवा के प्रचार-प्रसार ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। रेडियो देश के कोने-कोने की भी स्थानीय भाषाओं, बोलियों में कार्यक्रम प्रसारित

करता है। ''जहाँ घटना वहाँ बी.बी.सी.।'' यह बहुत सालों से पूरे विश्व में करोड़ों लोगों के मस्तिष्क पर रहा है। कमोबेश सभी भारतीयों का यही मानना है कि विश्व में कहाँ कौन-सी घटनाएँ हुई, इसकी पहली जानकारी बी.बी.सी. को ही होती है। क्योंकि इसने काल और समय के साथ प्रसारण किया। वैश्विक स्तर पर श्रोताओं में अपनी पहचान बनाई है, 'यह बी.बी.सी. लंदन है' इस घोषवाक्य से शुरू होने वाली हिंदी सेवा भारत में लोकप्रिय हुई। ''यह सेवा 1940 में भारत की स्वतंत्रता के धुर-विरोधी विंस्टन चर्चिल के प्रधानमंत्रित्व काल में शुरू हुई थी।''[15] और जल्दी ही हिंदी श्रोताओं में लोकप्रिय और विश्वसनीय हो गई थी। इसकी लोकप्रियता का अंदाज इसी से लगाया जा सकता है कि 2008 में इसके दो करोड़ श्रोता थे। यह श्रोता समूह निश्चित समय पर बी. बी.सी. का हिंदी प्रसारण सुनता था। 90 वर्ष के जीवन में हिंदी सेवा ने अभूतपूर्व ख्याति अर्जित की।

हिंदी भाषा के विकास में बी.बी.सी. ने वैश्विक स्तर पर प्रचार-प्रसार कार्य किया है। बी.बी.सी. ने दिल्ली में अत्याधुनिक स्टूडियो का निर्माण किया है और हर दिन हिंदी में चार न्यूज बुलेटिन प्रसारित होते हैं। 'आपकी बात बी.बी.सी. के साथ' नामक कार्यक्रम हर रोज प्रस्तुत किया जाता है। ''स्वतंत्रता के बाद भारत में बी.बी.सी. ने हिंदी सेवा शुरू की और बी.बी.सी. खबरों को नया आयाम दिया।''[16] ''पिछले 70 सालों से बी.बी.सी. हिंदी अचूक और निष्पक्ष सूचना का विश्वसनीय स्रोत रहा है।''[17] खासतौर पर संकट के समय बांग्लादेश मुक्ति अभियान, पंजाब संकट, ऑप्रेशन ब्लू स्टार, भोपाल गैस त्रासदी, 1975 का आपातकाल, बाबरी मस्जिद, गुजरात दंगे, भिंडरावाले प्रकरण से लेकर इंदिरा गांधी की हत्या तक बी.बी.सी. ने श्रोताओं को बाँधे रखा था। जब भारत में मीडिया पर सरकारी नियंत्रण था, उस समय बी.बी.सी. को जबर्दस्त लोकप्रियता मिली। भारतीय मीडिया के कई पत्रकारों ने बी.बी.सी. हिंदी को सुनकर ही पत्रकारिता की है और आजाद भारत की तीन पीढ़ियाँ बी.बी.सी. को सुनते हुए जवान हुईं। समाचारों के लिए तमाम साधन हैं, लेकिन बी.बी.सी. रेडियो हिंदी सेवा की जगह कोई नहीं ले सका। वहीं दूसरे विकल्प के रूप में वॉयस ऑफ अमेरिका की हिंदी सेवा, वॉयस ऑफ जर्मनी, सिलोन हिंदी सेवा जैसे रेडियो चैनल आए लेकिन बी.बी.सी. ने अपनी जगह बनाए रखी।

बी.बी.सी. की हिंदी सेवा की टीम चौबीस घंटे काम करती है। लंदन से लेकर भारत के हर राज्यों की राजधानी में इनके पत्रकार लोगों तक समाचार पहुँचाने के लिए तैनात हैं। 1994 में दिल्ली में बी.बी.सी. हिंदी सेवा ने ब्यूरो बनाया। इस ब्यूरो में देश के बेहतरीन पत्रकार रात-दिन काम करते हैं और श्रोताओं के लिए खबरें जुटाते

हैं। बी.बी.सी. हिंदी सेवा अपनी विशिष्ट भाषा-शैली और निष्पक्षता के लिए हमेशा से जानी जाती है। राजनीति से लेकर खेल के मैदान तक हर विषय पर इनके उत्कृष्ट कार्यक्रम हिंदी पत्रकारिता को नई दिशा देते हैं। बी.बी.सी. वर्ल्ड सर्विस भारत के साथ ब्रिटेन के रिश्तों में एक अहम् भूमिका निभाता है। पूर्व मंत्री और सांसद एडवर्ड लीन ने कहा है कि ''बी.बी.सी. का यह तर्क गलत है कि भारत में सूचना क्रांति हुई और अधिक से अधिक लोग टी.वी. देख रहे हैं। जबकि निर्धन राज्यों के गरीब लोग शॉर्ट वेब प्रसारण पर निर्भर करते हैं।''[18] बी.बी.सी. रेडियो सेवा अपेक्षाकृत बहुत सस्ती सेवा है, जो जारी रहनी चाहिए।

हिंदी भाषा के विकास में बी.बी.सी. पत्रकारों का योगदान

बी.बी.सी. किसी भी घटना का वार्तांकन बड़ी तेजी से करता है। सारी दुनिया में बी.बी.सी. की पत्रकारिता विश्वसनीय मानी जाती है। सारी दुनिया के माध्यमों में बी.बी.सी. की संपादकीय अखंडता, वस्तुनिष्ठता और स्वायत्तता महत्वपूर्ण है। हिंदी भाषाई पत्रकारिता के विकास में भारतीय पत्रकारों ने योगदान दिया है। ''भाषा संवाद का माध्यम है। भाषा एक ऐसी शक्ति है जो मानव को मानवता प्रदान करती है।''[19] भावों को प्रकट करने, विचारों को बोधगम्य बनाने तथा परस्पर व्यवहार बढ़ाने का यह एक विश्वव्यापी और सशक्त माध्यम है। विश्व में बोलचाल के लिए लगभग 3500 भाषाओं और बोलियों का प्रयोग होता है। चीनी और अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ हिंदी विश्व की प्रमुख भाषा है। हिंदी भारतीय मानस के बुद्धि, कौशल, विवेक, चिंतन, आचार-विचार, व्यवहार तथा संस्कृति की भाषा है। वैश्वीकरण के युग में विश्व में दूसरी बड़ी भाषा हिंदी है। इसलिए बी.बी.सी. ने, बी.बी.सी. हिंदी सेवा की शुरुआत की। बी.बी.सी. ने राष्ट्रीय, क्षेत्रीय एवं स्थानीय स्तरों पर ये सेवाएँ दी हैं। एशियाई राष्ट्रों एवं ब्रिटेन से लेकर सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं भाषाई विविधता के साथ विस्तार को गति दी गई। बी.बी.सी. की पत्रकारिता वस्तुनिष्ठ पत्रकारिता का उदाहरण है। ''सतीश जैकब ने इंदिरा गांधी की हत्या की खबर सर्वप्रथम इसी सेवा से प्रसारित की थी।''[20] यहाँ तक कि हत्या के समय सुदूर बंगाल दौरे पर गए राजीव गांधी ने बी.बी.सी. से ही इस खबर की पुष्टि की थी। बी.बी.सी. हिंदी सेवा से हिंदी के अनेक साहित्यकार और पत्रकार जुड़े थे। पत्रकारिता के क्षेत्र में खबरों के लिए आदर्श माने जाने वाली बी.बी.सी. ने विश्व की प्रमुख भाषाओं में पत्रकारिता की।

लेकिन अब इसने अपने प्रसारण में से पाँच भाषाओं की सेवाएँ समाप्त कर दी हैं। इनमें हिंदी भाषा की सेवा का भी समावेश है। सारी दुनिया और भारत के सभी पत्रकारों ने बी.बी.सी. की सेवा जारी रखने की ब्रिटिश सरकार से माँग की है। ब्रिटिश

सरकार ने संसद में कहा कि बी.बी.सी. प्रबंधन हिंदी सेवा पूर्ववत जारी रखे। इस पर बी.बी.सी. वर्ल्ड सर्विस ने स्वीकार किया है कि वह एक साल तक बी.बी.सी. जारी रखेगा।

बी.बी.सी. के पत्रकारों ने समाचार के बारे में वस्तुनिष्ठता, सत्यता को महत्व दिया है। बी.बी.सी. के पत्रकार स्वायत्त और स्वतंत्र होते हैं। अपनी स्थापना से लेकर अब तक के 90 सालों के अपने सफर में बी.बी.सी. की हिंदी सेवा ने अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं को कवर किया है। चाहे वह 1971 का भारत-पाक युद्ध हो, आपातकाल हो, संसद पर हमला, तमाम ऐतिहासिक घटनाओं को उनके वास्तविक रूप में सामने प्रस्तुत करने में बी.बी.सी. ने कोई कसर नहीं छोड़ी। हिंदी सेवा की शुरुआत भारत के जाने-माने प्रचारक जुल्फिकार बुखारी ने की थी। बाद में बलराज साहनी और जॉर्ज ऑरवेल जैसे शानदार प्रसारक हिंदुस्तानी सेवा से जुड़े रहे। पुरुषोत्तम लाल पाहवा, आले हसन, हरिश्चंद्र खन्ना जैसे शीर्ष प्रसारकों ने बी.बी.सी. हिंदी सेवा का मोर्चा संभाला। 1980-1990 के दशकों में भी कई पत्रकारों और प्रचारक आए और यह सिलसिला जारी रखा है।

हिंदी के रेडियो प्रसारण में बी.बी.सी. पत्रकार ने अपनी निष्पक्ष, शुद्ध साहित्य से परिपूर्ण तथा त्वरित पत्रकारिता के चलते भारत के करोड़ों लोगों के दिलों में सम्मानपूर्ण एवं आत्मीयतापूर्ण जगह बनाई थी। ''बी.बी.सी. ने अपने शानदार समाचार विश्लेषण, साहित्यिक सूझबूझ रखने वाले पत्रकारों तथा शुद्ध एवं शानदार उच्चारण के चलते स्वतंत्रता के बाद से लेकर अब तक भारतीय श्रोताओं के दिलों पर राज किया।''[21] तमाम भारतीय समाचार-पत्र-पत्रिकाएँ तथा इलैक्ट्रॉनिक मीडिया बी.बी.सी. के माध्यम से खबरें लेकर प्रकाशित व प्रसारित करते थे। इसलिए बी.बी.सी. की खबरें विश्वसनीयता की पूरी गारंटी हुआ करती थी। किंतु अब संभवतः यह गुजरे जमाने की बातें बनकर इतिहास के पन्नों में समा जाएँगी। हिंदी भाषा के विकास के लिए यह प्रसारण जारी रहना जरूरी है। 1967 से 1979 तक विनोद पांडे हिंदी खबर पढ़ा करते थे। मार्कटुली, रत्नाकर भारतीय, सतीश जैकब, आकाश सोनी आदि पत्रकारों ने हिंदी भाषा के विकास में विशेष योगदान दिया है। हिंदी कवियों और साहित्यकारों के साक्षात्कार भी बी.बी.सी. ने प्रसारित किए और हिंदी भाषा को बढ़ावा दिया। बी.बी.सी. की पत्रकारिता एक आदर्श पत्रकारिता थी। ''विदेशी मीडिया के ऊपर कोई सरकारी दबाव या राजनैतिक नियंत्रण नहीं है। इसलिए वे हर तरह से संतुलित समाचार प्रस्तुत करते हैं।''[22] बी.बी.सी. ने निष्पक्षता से बी. बी.सी. हिंदी सेवा के समाचार प्रस्तुत किए। भारत में बी.बी.सी. हिंदी पत्रकारिता में दो पूर्व प्रधानमंत्री इंद्र कुमार गुजराल और विश्वनाथ प्रताप सिंह पत्रकार एवं स्तंभकार के रूप में रह चुके हैं। वे बी.बी.सी. हिंदी डॉटकॉम से भी स्तंभकार और साहित्यिक

पत्रकार के रूप में जुड़े रहे। इसके अलावा प्रसिद्ध फिल्म अभिनेता देवानंद, सुपरिचित कवि और लेखक निदा फाजली, साहित्यकार असगर वजाहत, फिल्म स्तंभकार कोमल नाहरा और खेल पत्रकार प्रदीप मैगजीन समय-समय पर वेबसाइट से जुड़े रहे हैं। वर्ष 2001 में बी.बी.सी. ने हिंदी डॉटकॉम की सेवा शुरू की। ''यदि बी.बी.सी. हिंदी ऑनलाइन का उदाहरण लूँ तो पता चलता है कि तब बी.बी.सी. हिंदी रेडियो के श्रोता आमतौर पर उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तराखंड और राजस्थान जैसे हिंदी भाषी राज्यों में छोटे कस्बों या ग्रामीण इलाकों में स्थित हैं।''[23]

बी.बी.सी. संवाददाता एवं पत्रकार सुदूर गाँवों में, पहाड़ों पर, युद्ध क्षेत्र में जाकर 'आँखों देखा हाल' भेजने में खुश होता था। आज विभिन्न न्यूज चैनलों के संवाददाता, फोटोग्राफर घटनास्थल पर जाकर लोगों की भीड़ से सवाल करते हैं। सभी उपक्रम बी.बी.सी. ने सालों पहले किए हैं। ''1960 के दशक में बी.बी.सी. में आए महेंद्र कौल, हिमांशु कुमार भादुड़ी और ओंकारनाथ श्रीवास्तव, कैलास मुधवार, भगवान प्रकाश, विश्व दीपक त्रिपाठी और सुभाष वोहरा 1970 के दशक में बी.बी.सी. हिंदी सेवा से जुड़े रहे। बाद के दशक में परवेज आलम, अचला शर्मा, शिवकांत, नरेश कौशिक, पंकज सिंह, नीलाभ, धीरंजन मालवे, मधुकर उपाध्याय, विजय राणा, ममता गुप्ता, संजय श्रीवास्तव जैसे पत्रकार बी.बी.सी. में कार्यरत थे।''[24] हिंदी भाषा के विकास में इन पत्रकारों का योगदान उल्लेखनीय है। इसी योगदान के कारण बी.बी.सी. हिंदी सेवा बचाने के कई प्रयास होने लगे हैं। लंदन के अखबार 'गार्डियन' समाचार-पत्र में भारत के प्रतिष्ठित लोगों के हस्ताक्षर छापे। बी.बी.सी. हिंदी सेवा देश के गाँवों में सुनी जाती है। तमाम महत्वपूर्ण अवसरों पर यह सेवा हमारी जनता की खबरों का स्रोत बनी। बी.बी.सी. हिंदी सेवा और बी.बी.सी. पत्रकारिता ने आजाद भारत के तीन पीढ़ियों को पत्रकारिता सिखाई है।

बी.बी.सी. के समक्ष नई चुनौतियाँ एवं उनके संभावित उपाय

बी.बी.सी. वैश्वीकरण के युग में आर्थिक संकट से गुजर रही है। बी.बी.सी. ने राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं होता है। बी.बी.सी. के ऊपर लोगों का स्वायत्तता के लिए दबाव बढ़ता है। वित्तीय पुनर्गठन के लिए बी.बी.सी. संसाधन जुटाने के लिए प्रयास कर रहा है। बी.बी.सी. के एशियाई नेटवर्क स्टेशन बंद करने का फैसला बी.बी.सी. प्रबंधन ने किया है। बी.बी.सी. ट्रस्ट का कहना है कि ''बी.बी.सी. के इस कदम का असर सीधे तौर पर भारतीय उपमहाद्वीप के श्रोताओं पर पड़ेगा।''[25] बी.बी.सी. उच्चतम गुणवत्ता की सेवा मुहैया और उनके धन का सही इस्तेमाल करने के लिए प्रतिबद्ध है। विश्व के अनेक देशों की अपील है कि ''बी.बी.सी. की वित्तीय समस्याओं को देखते

हुए ब्रिटिश सरकार उसे आत्मनिर्भर बनाने के लिए ठोस कदम उठाए और वार्षिक वित्तीय सहायता देने पर विचार करे, जिसके 31 मार्च 2011 को समाधान की घोषणा बी.बी.सी. के महानिदेशक थॉमसन ने बी.बी.सी. वेबसाइट पर की है। बी.बी.सी. 22 भाषाओं में प्रसारण करता है। इसमें से पाँच भाषाओं में प्रसारण बंद हो रहे हैं।''[26] जिनमें हिंदी भी एक है। हिंदी भाषा के विकास में बी.बी.सी. की हिंदी सेवा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बी.बी.सी. के लिए काम कर चुके ब्रिटेन में रह रहे वरिष्ठ भारतीय पत्रकार कहते हैं कि एशियाई समुदाय में कई तरह की भाषाओं के चलन हैं। लोगों के सामने कई तरह के मीडिया के विकल्प मौजूद रहने और कमर्शियल रेडियो स्टेशन के द्वारा मिल रही कड़ी चुनौती के बीच बी.बी.सी. एशियाई नेटवर्क बंद करना जरूरी हो गया है। भूमंडलीकरण और उदारीकरण से बी.बी.सी. के द्वारा कर्मचारियों एवं पत्रकारों में कटौती की जा रही है। बी.बी.सी. वर्ल्ड ने लगभग अस्सी साल के बाद जर्मन प्रसारण 1999 में बंद कर दिया है। भूमंडलीकरण और उदारीकरण से विदेशी पूँजीवादी प्रिंट मीडिया और इलैक्ट्रॉनिक मीडिया का विस्तार हुआ है और सूचना प्रौद्योगिकी के युग में स्पर्धा को बढ़ावा मिला है। पेड न्यूज के जमाने में बी.बी.सी. को विज्ञापन मिलना मुश्किल हो गया है।

ब्रिटिश विदेश मंत्रालय से मिलने वाले कुल अनुदान में 16 प्रतिशत की कमी आने के बाद यह फैसला लिया गया है कि बी.बी.सी. वर्ल्ड की हिंदी सेवाएँ बंद कर दी जाएँ, लेकिन एक साल तक यह सेवा पूर्ववत् रहेगी। सरकारी फंडिंग में अहम् कटौती की वजह से यह परिवर्तन बी.बी.सी. ने किए हैं। हालाँकि वर्ल्ड सर्विस की सेवाएँ बरकरार रहेगी। विश्व-भर में फैले श्रोताओं से मिले फीडबैक से पता चलता है कि बी.बी.सी. वर्ल्ड सर्विस को दुनिया-भर में बेहद सम्मान दिया जाता है। बी.बी.सी. के अनुसार इस फैसले से वर्ल्ड सर्विस ने सुनने वाले श्रोताओं की कुल संख्या एक हफ्ते में 18 करोड़ से घटकर 15 करोड़ रह जाएगी। यानी श्रोताओं की संख्या में तीन करोड़ की कमी आएगी। लेकिन ब्रिटेन के विदेशी मंत्री ने इन कटौतियों को उचित ठहराया है। उन्होंने ब्रिटिश संसद में कहा कि वर्ल्ड सर्विस जितना संभव हो उतनी कार्यकुशलता से चलनी चाहिए और उसकी प्राथमिकताएँ नए बाजार और ऑनलाइन सेवाएँ तथा मोबाइल बाजार से सामना कर सके और बी.बी.सी. के सामने कई कमर्शियल संस्थाओं से भी इस तरह के प्रस्ताव को स्वीकार करने की जरूरत है जिसमें एशियाई भाषाओं में प्रसारण जारी रहेगा। धन जुटाने के लिए विज्ञापन और कमर्शियल संस्थाओं के सहयोग से वैकल्पिक व्यवस्था पर विचार करने की आवश्यकता है।

अमेरिकी सरकार सालाना दो करोड़ डॉलर हिंदी सेवाओं के ऊपर खर्च करती थी।

लेकिन अब बजट का उपयोग अरब में प्रसारित होने वाली सेवाओं के लिए उपयोग किया जाएगा। 2008 में वॉयस ऑफ अमेरिका हिंदी सेवाएँ भारत में समाप्त कर दी गई थीं क्योंकि शीतयुद्ध की समाप्ति और भारत का तीव्र आर्थिक विकास के बाद अमेरिका की प्राथमिकताएँ बदल गईं। सवाल यह है कि क्या बी.बी.सी. भी उन नीतियों का अनुसरण कर रही है जिसे कुछ साल पहले अमेरिका ने शुरू किया था। सच्चाई यह है कि 9/11 की घटनाओं के बाद से ही हिंदी भाषा के साथ बी.बी.सी. के व्यवहार में अंतर आना शुरू हुआ। भूमंडलीकरण और उदारीकरण से व्यावसायिक स्पर्धा इतनी बढ़ी है कि बी.बी.सी. का आर्थिक संकट बढ़ गया है। लेकिन बी.बी.सी. के पास उर्दू-अरबी भाषाओं का प्रसारण विस्तार के लिए बजट है और हिंदी सेवा के लिए बजट की कटौती। नए क्षेत्रों में विस्तार और दूसरी भाषाओं के कुछ प्रसारण बंद करना और बजट समस्याओं को कौन स्वीकार करेगा। बी.बी.सी. ने उर्दू सेवा का प्रसारण जारी रखा है। पिछले तीन सालों में बी.बी.सी. ने उर्दू रेडियो सेवा विस्तार के लिए पाकिस्तान में एक या दो नहीं कुल 34 निजी एफ.एम. रेडियो स्टेशनों से करार किया है और बी.बी.सी. ने दिन-भर कुल ग्यारह बार कार्यक्रम प्रसारित किए। बी.बी.सी. के इस विस्तार पर पाकिस्तान इलैक्ट्रॉनिक मीडिया रेग्युलेटरी ऑथरिटी की नजर पड़ी तो इस ऑथरिटी ने 24 स्टेशनों को बंद कर दिया। इस पर बी.बी.सी. ने चुनौती देने का फैसला किया और यह मामला अदालत तक पहुँचा और कानूनी जीत के बाद बी.बी.सी. ने एफ.एम. रेडियो स्टेशन शुरू किए। इससे लगता है कि बी.बी.सी. विस्तार में बजट कभी आड़े नहीं आया है। बी.बी.सी. ने नेपाली विस्तार की यात्रा जारी रखी है। नेपाल के कम से कम पाँच एफ.एम. रेडियो पर बी.बी.सी. नेपाल भाषाओं में कार्यक्रम सुने जा रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि बी.बी.सी. ने इस विस्तार में भी बजट व्यवस्था की है। अन्य भाषाओं के प्रसारण के लिए कटौती का कारण देकर बी.बी.सी. कुछेक भाषाओं के प्रसारण बंद कर रही है। दुनिया की कोई भी समाचार संस्था एक खास अभियान और हित के लिए काम करती है। बी.बी.सी. ब्रिटिश साम्राज्य के कारण ब्रिटिश हितों को सुरक्षित रखने के लिए प्रमुख भाषाओं में कार्यक्रम प्रसारित करती थी। उनका उद्देश्य समाप्त हो गया है। आर्थिक संकट और बजट कटौती के कारण देकर हिंदी भाषा के साथ अन्य भाषाओं का बी.बी.सी. प्रसारण 2014 तक बंद करेगी, ऐसा बी.बी.सी. ट्रस्ट का कहना है। ''वहीं दूसरे विकल्प के रूप में वॉयस ऑफ अमेरिका हिंदी सेवाएँ, वॉयस ऑफ जर्मनी, सिलोन हिंदी सेवा जैसे रेडियो चैनल आए। लेकिन बी.बी.सी. ने अपनी जगह बनाए रखी।''[27] बहु-विकल्प मीडिया के कारण बी.बी.सी. को चुनौती मिल रही है। ''2003 में बी.बी.सी. में प्रसारित एक खबर ने इसे और सरकार को आमने-सामने लाकर खड़ा कर दिया था। मई 2003 में बी.बी.सी. टुडे प्रोग्राम

में ब्रिटिश सरकार पर आरोप लगाया था। सरकार ने इंटेलिजेंस सर्विस और इराक में सामूहिक विनाश हथियारों की फाइल में छेड़छाड़ की।''[28] बी.बी.सी. की इस खबर को ब्रिटिश सरकार ने गलत बताया। इस संदर्भ में ब्रिटिश सरकार ने पार्लियामेंट कमेटी का गठन किया। बी.बी.सी. के कार्यक्रमों की समीक्षा संसदीय समिति करेगी और बी.बी.सी. को लगाम लगाने के लिए कोई न कोई कदम जरूर उठाएगी। इसी कारण बी.बी.सी. के बजट में कटौती की गई है। ऐसा मीडिया विश्लेषकों का मानना है। बी.बी.सी. रेडियो वैचारिक चिंतन करके वित्तीय सहायता और धनराशि जुटाने के लिए कॉर्पोरेट संस्थाओं की मदद की जरूरत है। इसके अलावा, विज्ञापन के माध्यम से धनराशि अर्जित की जानी चाहिए। साथ ही, परस्पर सूचना का एक तंत्र विकसित करने की भी जरूरत है। राजनैतिक दबाव तंत्र के कारण संस्थाओं को कठिनाई का सामना करना पड़ता है। बी.बी.सी. हिंदी सेवाएँ बचाने के लिए कार्पोरेट और बड़ी औद्योगिक संस्थाओं को आर्थिक सहायता से भी समस्या का समाधान किया जा सकता है। श्रोताओं की संख्या बढ़ाने के लिए उपाय करने की भी आवश्यकता है।

निष्कर्ष

बी.बी.सी. वर्ल्ड सारी दुनिया में विश्वसनीय ब्रिटिश स्वायत्तशासी मीडिया है। विश्व और भारतीय प्रसारण सेवा के इतिहास में बी.बी.सी. हिंदी सेवा का अविस्मरणीय योगदान है। इसके विकास में साहित्यकारों एवं पत्रकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बी.बी.सी. ने हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार किया है। खुली अर्थव्यवस्था की वजह से बी.बी.सी. वर्ल्ड का प्रभाव कम हो चुका है। व्यावसायिक स्पर्धा इतनी बढ़ी है कि बी.बी.सी. को समाचार और विज्ञापन में संतुलन बनाए रखना मुश्किल हो गया है। इसलिए बी.बी.सी. ने हिंदी सहित विश्व की पाँच भाषाओं का प्रसारण बंद करने का फैसला किया है। बी.बी.सी. का नब्बे साल का इतिहास बंद हो जाने वाला है। लेकिन विज्ञापन के माध्यम से धन की व्यवस्था की जाएगी और वैकल्पिक तलाश की जा रही है। यदि इस स्थिति में सुधार नहीं आता तो कुछ समय बाद यह हिंदी सेवा सुनाई नहीं देगी।

❑

संदर्भ

1. द वर्क ऑफ बी.बी.सी. वर्ल्ड सर्विस, 2008-09
2. केविल रेफर्टी – आर्थिक संकट और भारत, दैनिक भास्कर, 12 जुलाई 2001, पृ. 4
3. ओमप्रकाश सिंह – संचार माध्यमों का प्रभाव, क्लासिकल पब्लिशिंग, नई दिल्ली
4. बृजमोहन गुप्त – जनसंचार विविध आयाम, पृष्ठ 7

5. डॉ. अर्जुन तिवारी – जनसंचार और हिंदी पत्रकारिता, पृष्ठ 101
6. बी.बी.सी. वर्ल्ड कॉम – बी.बी.सी. रेडियो अकादमी, 2011
7. डॉ. अर्जुन तिवारी – जनसंचार और हिंदी पत्रकारिता, पृष्ठ 100
8. ओम गुप्ता – प्रसारण और फोटो पत्रकारिता, कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002, पृष्ठ 1
9-10. प्रो. रमेश जैन – जनसंचार और पत्रकारिता, पृष्ठ 198
11. बी.बी.सी. वर्ल्ड सेवा – द वॉर कॉमंट्रीज, 1985
12. डॉ. कृष्ण कुमार रत्तू – सूचना तंत्र और प्रसार माध्यम – प्रथम खंड, पृष्ठ 141
13. प्रो. मधुसूदन त्रिपाठी – भारत में प्रेस कानून, पृष्ठ 83
14. प्रियंका वाधवा – पत्रकारिता के विविध रूप सिद्धांत, पृष्ठ 213
15. बी.बी.सी. की हिंदी सेवा – दैनिक लोकमत समाचार, औरंगाबाद संस्करण (महाराष्ट्र), 16 फरवरी, 2011, पृष्ठ 6
16. बी.बी.सी. हिंदी सेवा, प्रभात खबर – 31 मार्च, 2011
17. डॉ. वि.ल. धारुरकर – जनसंवाद सिद्धांत, चैतन्य प्रकाशन, औरंगाबाद, 12 दिसंबर, 2008, पृष्ठ 302
18. बी.बी.सी. हिंदी प्रसारण, दैनिक भास्कर कॉम, 15 मार्च, 2011, पृष्ठ 23
19. डॉ. तुकाराम दौड – प्रसार भारती एक अध्ययन, पी-एच.डी. शोध-प्रबंध, डॉ. बाबा साहब अंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद, 22 अक्तूबर, 2002
20. डॉ. तुकाराम दौड – हिंदी भाषा के विकास में मराठी भाषिक पत्रकारों का योगदान, संचारश्री पत्रिका, अप्रैल-जून, 2008, पृष्ठ 1
21. बी.बी.सी. हिंदी सेवा – दैनिक लोकमत समाचार, औरंगाबाद संस्करण, 16 फरवरी, 2011
22. तनवीर जाफरी – बी.बी.सी. हिंदी का बंद होना एक त्रासदी, दैनिक ट्रिब्यून, 29 अप्रैल, 2011
23. ऋतु जाफरी – पत्रकारिता का ज्ञानकोश, पृष्ठ 30
24. सत्यमा जैदी – नया मीडिया चुनौती दे भी रहा है और झेल भी रहा है, मीडिया मीमांसा पत्रिका, अप्रैल-जून, 2008, पृष्ठ 22-23
25. द गार्डियन, 19 फरवरी, 2011
26. बी.बी.सी. रेडियो, यू.के. 2011
27. दैनिक जागरण, 1 फरवरी, 2011
28. दि संडे पोस्ट, 3 मार्च, 2011

कल्पना पांडेय

अनुवाद की व्याप्ति में रासपंचाध्यायी

श्रीमद्भगवत महापुराण के दशम स्कंध के अध्याय 29-33 'रासपंचाध्यायी' के रूप में स्वीकृत हैं। इन्हीं अध्यायों में वर्णित लीलाओं को मध्यकालीन कवियों ने सगुण काव्यधारा के अंतर्गत जनभाषाओं में गाया है, जिन्हें अनुवाद के विविध प्रकार भेदों के अंतर्गत रखा जा सकता है। विदेशी-आक्रांताओं से त्रस्त जनता को कृष्णाश्रयी कवियों ने बालक कृष्ण का संबल प्रदान कर उन्हें मानसिक शांति प्रदान की। ऐसी सामाजिक परिस्थिति में प्रयोजन विशेष के वशीभूत रसिक कवियों ने श्रीमद्भागवत से प्रेरणा ली तथा उसे गेय पदों एवं छंदों में प्रस्तुत किया। श्रीमद्भागवत की भाषागत शिथिलता के परिमार्जन हेतु जनभाषाओं में सरस प्रसंगों का समावेश किया गया तथा प्रिय आराधिका गोपी के रूप में राधा की महत्ता को अनिवार्य रूप में स्वीकृति मिली। मूल भागवत में राधा का अभाव है, किंतु एक प्रिय गोपी का प्रसंग अंतर्ध्यान लीला के अंतर्गत आया है, जिसका अभिधान नहीं है :

अनयाराधितो नूनं भगवान्हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः।।

(श्रीमद्भागवत 10/30/28)

कृष्णाश्रयी शाखा के प्रमुख संप्रदाय हैं – चैतन्य, निंबार्क, अष्टछाप, राधावल्लभ, हरिदासी तथा ललित संप्रदाय। इन संप्रदाय-पोषित कवियों के विरचित रास-प्रसंग वास्तव में मूल का जनभाषा में स्थानांतरण ही हैं। किन्हीं लीलाओं का विस्तार एवं उसमें कुछ नवीन रोचकता अनुवादक के कुछ जोड़ने तथा कुछ छोड़ने के अधिकार की रक्षा करती है। उदाहरण के तौर पर, श्री शुकदेव प्रोक्त रासपंचाध्यायी में आत्मा-परमात्मा के मिलन को आध्यात्मिक स्तर पर निरूपित किया गया है किंतु भाषांतरण में संप्रदाय से प्रेरित कवि-आचार्यों ने सामाजिक आग्रह और लोकाकांक्षा के अनुकूल क्षेत्रीय बोलियों और मुहावरों को पर्याप्त स्थान

दिया। लीला वर्णन के अंतर्गत किसी प्रसंग का विस्तार कर देना या फिर किसी प्रसंग का संक्षेप कर देना इन संप्रदायों की मौलिक विशेषता है। लीलाओं का क्रम-परिवर्तन तथा नवीन प्रसंगों की उद्‌भावना कवियों की सर्जनात्मक प्रतिभा का सूचक है। कवियों की इन्हीं मौलिक उद्‌भावनाओं ने मूल विषय-वस्तु के प्रसंग तथा उद्देश्य में परिवर्तन ला दिया है।

'रासपंचाध्यायी' में कृष्णलीला आध्यात्मिक स्तर पर परिलक्षित होती है। गोपियों का वस्त्रहरण, महारास, कुब्जा उद्धार, इन सभी प्रसंगों में श्रीकृष्ण परमात्मा के रूप में तथा गोपियाँ जीवात्मा के रूप में ही वर्णित हैं। किंतु भक्ति संप्रदाय के कवियों ने राधा की महत्ता तथा उपस्थिति को अनिवार्य स्वीकृति दी तथा 'रासपंचाध्यायी' को साधारण भावभूमि पर स्थापित एवं प्रतिष्ठित किया। प्रकारांतर से रासलीला एक ऐसी सूक्ति बन गई जो उच्छृंखल परिघटनाओं के संदर्भ में भी प्रयुक्त होने लगी। अध्यात्म का यह विपर्यय मूल की अलौकिकता के समक्ष प्रश्न-चिह्न बन गया, मूल विषय-वस्तु का उद्देश्य समय के साथ-साथ तथा भाषागत परिवर्तन के कारण अप्रचलित होने लगा। इसका कारण स्रोत भाषा संस्कृत का सामान्यजन की बोली न होना ही रहा। विशाल जनसमुदाय ने भक्तिकालीन रास-प्रसंग को ही मूल की तरह स्वीकृति दी, जिसमें पौराणिक आध्यात्मिकता का अंशतः लोप होता चला गया।

मध्यकालीन भक्तिकाव्य में 'कृष्ण दर्शन' में राधा शक्ति का प्रतीक हैं, श्रीकृष्ण परमात्मा हैं, वृंदावन सहस्रदल कमल हैं और गोप-सुंदरियाँ अंतःकरण की वृत्तियाँ हैं। वंशी की तान प्रणव का वह नाद है जिसे योगी सुनते हैं। इस नाद को सुनकर ब्रजवनिताएँ विषय-रूपी संसार को त्यागकर परम प्रियतम से मिलने चल पड़ती हैं। वस्तुतः यह मृण्मय का चिन्मय से मिलन है। श्रीमद्‌भागवत दशम स्कंध के अंत में श्री शुकदेव जी कहते हैं कि हे परीक्षित! जो धीर पुरुष ब्रज युवतियों के साथ श्रीकृष्ण के इस चिन्मय रास-विलास का श्रद्धा के साथ बारंबार श्रवण एवं वर्णन करता है, उसे भगवान के चरणों में पराभक्ति की प्राप्ति होती है और वह शीघ्र ही काम-विकार से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार 'रास' वह सोपान है जिसके माध्यम से निराकार ब्रह्म की अनुभूति तक सहजता से पहुँचना संभव है।

श्रीमद्‌भागवत में वर्णित 'महारास' शरद ऋतु में संपन्न होता है, किंतु वैष्णव ग्रंथों में कहीं-कहीं वसंत ऋतु में रासोत्सव का वर्णन है। मूल 'रासपंचाध्यायी' तथा भक्तियुगीन (मध्यकालीन) कृष्णलीला में साम्यता एवं विशिष्टता के दर्शन कतिपय कृतियों में होते हैं। श्रीमद्‌भागवत के दशक स्कंध के 29वें अध्याय में मानलीला के अंतर्गत शुकदेवजी ने श्रीकृष्ण के सान्निध्य में गोपियों के दर्प का विवेचन इस प्रकार किया है :

एवं भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः।
आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मनिन्योऽभ्यधिकं भविः।।

(श्रीमद्‌भागवत 10/29/47)

अष्टछाप के कवि नंददास ने इसी प्रसंग को ब्रजभाषा में इस प्रकार प्रस्तुत किया है :

अस अद्‌भुत पिय मोहन सों मिलि गोप दुलारी।
नहिं अचरजु जौ गरब करहिं गिरिधर की प्यारी।।
रूप भरीं गुन भरीं भरीं पुनि परम प्रेम रस।
क्यौं न करैं अभिमान कान्ह भगवान किए बस।।

(नंददास, रासपंचाध्यायी, 58-59)

नंददास की उक्त पंक्ति से स्पष्ट है कि यह भाषांतर अत्यंत सहज है जिसका उद्देश्य अशिक्षित एवं भावुक जनता को भागवत का संदेश देना है। 'गरब' शब्द गर्व का तद्‌भव रूप है जो आपसी बोलचाल की भाषा में आम स्थान रखता है।

'रास' के आरंभ का प्राकृतिक दृश्य श्रीशुकदेव जी ने परीक्षित के समक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया है :

''भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्ल मल्लिकाः।

... ...

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरूपेण शतमैः।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्प्रियः प्रियाया इब दीर्घ दर्शनः।
दृष्ट्‌वा कुमुद्‌वंतमखंडमंडलं रमाननाभं नवकुंकुमारूणम्।
वनं च तत् कोमलगोभिरंजितं जगौ कलं वामदृशां मनोहरम्।।''

(श्रीमद्‌भागवत 10/29/1-3)

ब्रजभाषा में इसका रूपांतर इस प्रकार किया गया है :

ऋतु बसंत में लसत सूरति दोऊ बैठे निकसि निकुंज बाग।
ललित गुंज मंजुल लतान पर अलि पुंजनि की सुनि सुनि गुनि गुनि
पुनि पुनि रह को चढ़त पाग।
बौरे आंबनि चढ़ि चढ़ि बौरे जुग जुग द्‌वै कुहुकत कोकिल
कुल रीझत सुनि कलख घिभाग।
प्रफुलित गुल लाला की क्यारी पवन लगति मटकति लहकारी।
पिय प्यारी चख लगनि लाग।

(वल्लभ रसिकजी की वाणी, पृष्ठ संख्या 20-21)

इसी प्रसंग में किशोरीदास जी के भाव चित्र इस प्रकार हैं :

नव वध बसंत रितुहली लिए आवै।
नाना रंग कर कुसमित वल्ली विविध सुगंधि संवारि सबै
विधि रति रस रंगनि बढ़ावै।।
भौरे अंबनि गुंजत मधुकर बोलत कोयल मृदु कल कंठनि
विविध भाँति करि रुचि उपजावै।
किशोरीदास ब्रजचंद्र छबीली जहाँ रीझि रिझावान काजै

सुंदरि बन ठन आली कुसुमाकर गुन प्रकटावै।।

(किशोरीदास जी की वाणी, पृ. 53)

इन दोनों रचनाओं में प्राकृतिक दृश्य मनोरम है, किंतु मूल की तुलना में पृष्ठभूमि में भेद स्पष्ट है। मूल में 'शरदोत्फुल्लमल्लिका' अर्थात् शरद ऋतु का उल्लेख है किंतु ब्रज कविता में वसंत ऋतु का सौंदर्य वर्णित है। इस आधार पर उक्त सर्जनात्मक कृति को अनुवाद की श्रेणी में रखना न्यायोचित नहीं है। किंतु तीनों वर्णन 'रास' के परिवेश का ही गान हैं। इन तीनों प्राकृतिक वर्णनों में रासलीला की उद्दीपक पृष्ठभूमि की प्रस्तुति ही उद्देश्य है। ऐसी रचनाओं को काव्यानुवाद की व्याप्ति के अंतर्गत स्वीकार किया जा सकता है, जिसे भावानुवाद तथा मुक्तानुवाद की संज्ञा दी जाती है। इन्हीं के आधार पर सर्जनात्मक कृतियों के अनुवादक को दूसरे रचनाकार के रूप में स्वीकार किया जाता है।

मूल रासपंचाध्यायी में गोपियाँ श्रीकृष्ण के रूप लावण्य का वर्णन करती हैं। इसी रूप लावण्य ने गोपियों को उनकी दासी बना दिया है :

वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुंडलश्रीगंडस्थाधरसुधं हसितावलोकम्।
दत्ताभयं च भुजदंडयुगं विलोक्य वक्षः श्रियैकरमणं च भावमदास्यः।।

(श्रीमद्भागवत, 10/29/39)

श्रीकृष्ण के इस अप्रतिम सौंदर्य को सूरदास मदनमोहन ने इस प्रकार वर्णित किया है :

मन मोह्यौ मदन गुपाल। तन श्यामल नैन विशाल।।
नव-नील घन तन श्याम। नव पीत पट अभिराम।।
नव मुकुट नव वन-दाम। लावण्य कोटिक काम।।
मनमोहन रूप धरयौ। तब काम कौ गर्व गरयौ।।

(सूरदास मदनमोहन की वाणी, पद 17)

इस उदाहरण के मूल में श्रीकृष्ण के सौंदर्य के अधीन गोपियाँ हैं तथा सूरदास मदनमोहन द्वारा किए गए अनुसृजन में श्रीकृष्ण का सौंदर्य कामदेव का दर्पदलन कर रहा है। दोनों रचनाओं में वर्णन तो रूप सौंदर्य का ही किया गया है, किंतु एक में जीवात्मा का समर्पण है तथा दूसरे में परमात्मा का आलौकिक सौंदर्य है, जो मनोहर है। मूल में सौंदर्य वर्णन इस प्रकार है :

''बाहु प्रसारपरिरंभकरालकोरुनीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः।
क्ष्वेल्याऽवलोकहसितैर्व्रजसुंदरीणामुत्तभ्मयत्रतिपतिं रमायांचकार।।

(श्रीमद्भागवत, 10/29/46)

हितहरिवंश और श्रीहरिराम व्यास ने इस सौंदर्य क्रीड़ा की अनुकृति इस प्रकार की है :

सुरतनीवी-बंध हेत प्रिय मनिनी,
प्रिया की भुजनि में कलह मोहन रची।
सुभग श्रीफल उरज पनि परसत,
रोष हुँकार गर्व दृग-भंगि भामिनी लची।
कोक कोटिक रभसि रहसि हरिवंश हित,
विविध कल माधुरी किमपि नाहिन बची।
प्रनय मय रसिक ललितदि लोचन चषक,
पिबत मकरंद सुखरशि अंतर सची।।

(गोस्वामी हितहरिवंश, हितचौरासी, पद संख्या 50)

क्रीड़त कुंज कुटीर किशोर।
कुसुम पुंज रचि सेज हेज, मिलि बिछुर न जानत भोर।
स्याम काम-बस तोरि कंचुकी, करजनि गहि कुच-कोर।
स्यामा मुंच मुंच कह, खंडित गंड अधर की ओर।
नागर नीबी बंधन मोचत, चरन गहि करत निहोर।
नागरि नेति नेति कहि, करसौं कर पेलत गहि डोर।
मत्त मिथुन मैथुन दोऊ प्रगटत वरबट जोबन जोर।
व्यास स्वामिनी की छवि निरखति भये सखि लोचन चोर।।

(श्रीहरिराम व्यास, व्यास वाणी, पद 280)

इन पदों में मूल के निकटवर्ती शब्द विशेष तौर पर द्रष्टव्य हैं। जैसे 'बाहुप्रसार' शब्द-समूह के लिए ब्रजभाषा में 'भुजानि में' और 'करजनि' शब्द प्रयुक्त किए गए हैं। 'भुजानि' और 'कर', दोनों शब्द मूलतः संस्कृत के हैं, किंतु इनका प्रयोग 'में' और 'जनि' के साथ हुआ है, जिससे ये शब्द जनभाषा में अंतर्विष्ट हो गए हैं। 'सुंदरीणाम्' शब्द के लिए पहले अनुवाद में प्रयुक्त 'भामिनी' शब्द मूलभाषा के समकक्ष है, जबकि दूसरे अनुवाद में प्रयुक्त 'नागरि' शब्द ठेठ ब्रजभाषा का है। भाषा का विचलन कहीं शास्त्रीयता का बोधक है तो कहीं क्षेत्रीयता की ओर उन्मुख है। प्रथम अनुवाद में प्रयुक्त 'प्रनय' शब्द 'प्रणय' का तद्भव रूप है। इसमें संस्कृत से प्रेरित शब्द-समूह (गर्व दृगभंगी, किमपि, ललितादि लोचन, चषक) ब्रजभाषा की शास्त्रीयता का बोध कराते हैं। साथ ही 'रची, लची, बची, सची', शब्दों ने इस पद को जनसाधारण के लिए गेय बना दिया है।

दूसरे अनुवाद में प्रयुक्त 'क्रीड़त' शब्द संस्कृतनिष्ठ है। इस छंद में 'क' वर्ण की आवृत्ति से अनुप्रास की छटा रमणीय बन गई है। 'अधर', 'नेति-नेति' शब्द मूलनिष्ठ हैं, किंतु यहाँ ब्रजभाषा की लोच क्षेत्रीयता एवं सामयिकता की ओर अपेक्षाकृत अधिक है। इन पदों में मूल का अधिकांश भाव – संयोग-शृंगार – परिलक्षित होता है। ब्रजभाषा

में शब्दों का हेरफेर तथा देशज (परसत, नाहिन, बिछुर, गहि, निहोर, निरखति) शब्दों का प्रयोग अधिक है।

महारास की इस क्रीड़ा का वर्णन प्रायः सभी कृष्णभक्त कवियों ने पूरी आस्था के साथ किया है। यहाँ मूल का ही भावानुवाद है। सूरदास की रचनाओं का आधार भागवत है, इसमें विषय-वस्तु की पर्याप्त साम्यता भी है। 'सूरसागर' का दशम स्कंध तो श्रीमद्भागवत का ब्रजभाषा में भाष्य प्रतीत होता है, किंतु वर्णन इतना ललित्यपूर्ण है कि इसे अनुवाद के अंतर्गत रखना न्यायोचित नहीं है। अनुवाद सिद्धांत के अंतर्गत अनुवाद प्रकार की व्यापकता में प्रेरणानुवाद, मुक्तानुवाद आदि को सत्यदेव चौधरी ने 'शाकुंतलम्' के रूपांतर की भूमिका में स्वीकार किया है। किंतु प्रभुदयाल मित्तल 'सूरसागर' को अनुवाद से इतर स्वीकार करते हैं। प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी भी प्रेरित एवं अनुवाद की व्याप्ति में आने वाली कृतियों को अनुवाद से पृथक् 'अनुसृजन' के अधीन मानते हैं। इन सिद्धांतों पर विचार करें तो अनुसृजन की सत्ता के अधीन अनुवाद का विस्तृत क्षेत्र सीमित हो जाता है।

इस प्रकार, विषय-वस्तु का भाषांतरण तो संस्कृत से ब्रजभाषा में स्पष्ट है किंतु शब्दों द्वारा ललित चित्र इन कवियों की मौलिकता के पक्ष में है। मूल भाषा का अर्थांतरण ब्रजभाषा में लगभग पूरी तरह से हुआ है, किंतु नवीन प्रसंगों की उद्भावना तथा मूल प्रसंग के वर्णन वैचित्र्य के कारण भी इन कृतियों को अर्थानुवाद के रूप में नहीं स्वीकार किया जा सकता। ये मूल से प्रेरित स्वतंत्र मौलिक (अनुसृजित) रचनाएँ हैं। इस कृष्णलीला का दार्शनिक लक्ष्य मूल संस्कृत एवं ब्रजभाषा में एक ही है। काम का दर्पदलन, रास के माध्यम से जीवात्मा का परब्रह्म से मिलन, कामविकार से मुक्ति – यही रासपंचाध्यायी का लक्ष्य है। इस आधार पर संस्कृत की दुरूहता के कारण ब्रजभाषा के माध्यम से साधारणजन को इस महामिलन का संदेश स्थानांतरित हो रहा है। इसलिए इसे अनुवाद (अनु + वाद) की श्रेणी में रखा जा सकता है, अर्थात् पूर्वाचार्यों के अनुसरण की दृष्टि इस रासदर्शन में निहित है।

अंत में यही कहा जा सकता है कि मूलतः 'तत्' एवं 'त्वं' की क्रीड़ा ही रासलीला है, जिसे मध्ययुगीन कवियों ने सहज अवबोधन के साथ जनभाषा में गाया है। लौकिक लीलाओं के आधार पर यह अनुवाद के अंतर्गत पूर्णतः स्वीकृत नहीं हो सकता, किंतु दर्शन पक्ष की दृष्टि से यह मूल का अनुवाद है, जिसमें अनुवादक स्वतंत्र रचनाकार है।

❑

शालिनी कुमारी

अनुवाद मूल्यांकन के निकष पर 'अछूत' उपन्यास

मुल्कराज आनंद (1905-2004) द्वारा लिखित 'अनटचेबल' एक कालजयी कृति है और इसका साहित्यिक महत्व है। इस कृति को पढ़े बिना भारत की अस्पृश्यता और जातिवाद की समस्या को समझना नामुमकिन है। इस कृति की पृष्ठभूमि और विशेष परिस्थितियों का ध्यान रखना भी आवश्यक है। आज 'अस्पृश्यता', 'जाति', 'अछूत', 'आउटकास्ट', 'अनटचेबल' जैसे शब्दों की विशिष्ट परिभाषाएँ निकल कर आई हैं, लेकिन उस समय तक इन शब्दों के आम मायने हुआ करते थे। आज के दौर में दलित साहित्य और दलित लेखन के विमर्श उभरकर सामने आ रहे हैं, लेकिन जब मुल्कराज आनंद ने इस उपन्यास की रचना की थी, तब अछूतों पर लिखने वालों और उन पर दया दृष्टि दिखाने वालों को हीन नजरों से देखा जाता था। इसके कारण स्पष्ट थे – 1936 या उससे पहले के उपन्यासों में इन शब्दों की कोई स्वीकृत परिभाषा मौजूद नहीं थी। उस समय महात्मा गांधी और डॉ. भीमराव अंबेडकर ही अछूत समस्या पर गहराई से विचार कर रहे थे। इसी कारण शायद मुल्कराज आनंद के इस उपन्यास पर भी महात्मा गांधी का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इस प्रभाव का एक कारण यह भी था कि उन्होंने सामाजिक मूल्यों के साथ आंतरिक मूल्यों को भी महत्त्वपूर्ण माना था। उनके अनुसार जो कार्य समाज और वातावरण को साफ, स्वच्छ और सुंदर बनाता है वह कभी भी छोटा या गंदा नहीं होता। मुल्कराज आनंद भी ऐसी ही विचारधारा को मानते थे।

बीसवीं सदी के लेखन में मुल्कराज आनंद का नाम उन अग्रणी भारतीयों में से एक है, जिन्होंने अंग्रेजी में साहित्य रचना करते हुए भारतीय समाज, संस्कृति और उसकी समस्याओं पर प्रहार किया। उन्होंने आर.के. नारायण, अहमद अली और राजा राव जैसे लेखकों की तरह इंडो-एंग्लो पर आधारित रचनाएँ लिखीं। उन्होंने चार्ल्स डिकेंस और प्रेमचंद की लीक चलते हुए किसानों, मजदूरों तथा अछूतों को अपनी रचना का आधार बनाया

तथा समाज की कुरीतियों और अस्पृश्यता का पर्दाफाश किया। वे अपनी कृतियों में तथाकथित निम्न जाति के आदमी के साथ निम्न जाति की औरत की मनोदशा का भी बयान करते हैं। प्रेमचंद ने भी ऐसा ही किया है, जिसे उनके विश्वविख्यात उपन्यास *'गोदान'* और उनकी अन्य कृतियों में देखा जा सकता है। इसी प्रकार फणीश्वरनाथ रेणु ने भी *'मैला आँचल'* उपन्यास के माध्यम से यादव, संथालों, ठाकुरों आदि सभी जातियों के मध्य पारस्परिक विरोध और इनकी आंतरिक समस्या का चित्रण किया है।

मुल्कराज आनंद की प्रसिद्धि ऐसे लेखक के रूप में है, जिन्होंने अपने देश के सरोकार को अपनी लेखनी से कभी पृथक नहीं होने दिया। उनकी लेखनी सर्वदा यथार्थवादी दृष्टिकोण से प्रभावित रही। उन्होंने अपनी सभी रचनाओं में सामाजिक यथार्थ का कटु चित्रण प्रस्तुत किया। वे समाज के उन लेखकों में से एक रहे, जिन्होंने समाज के दबे-कुचले वर्ग की संवेदना को केवल समझा ही नहीं बल्कि पूरी सहानुभूति और मानवीयता के साथ उसके चित्र भी उकेरे। यही कारण है कि उन्हें प्रेमचंद की लीक के साहित्यकार के रूप में देखा जाता है।

मुल्कराज आनंद के लेखन कार्य का आरंभ परिवार की एक दुःखद घटना और जातिवाद के प्रकोप के कारण हुआ। उनके लेखन का आरंभ उनकी बुआ की आत्महत्या पर आधारित था। उन्हें परिवार से बेदखल कर दिया गया था क्योंकि उन्होंने धर्म और जाति की परवाह न करते हुए एक मुस्लिम लड़की के साथ खाना बाँटा था। इस घटना से बात साफ हो जाती है कि धर्म और जाति को मानने वाले एक कट्टर परिवार से संबंध रखने के बावजूद मुल्कराज आनंद समाज के उस वंचित, हीन वर्ग के प्रति पर्याप्त संवेदनशील और सहानुभूति की भावना रखते थे और उन्होंने 'अनटचेबल' जैसे उपन्यास की रचना की।

'अनटचेबल' का केंद्रीय पात्र बक्खा है, जिसके चारों ओर उपन्यास के सभी पात्र घूमते हैं। बक्खा एक गरीब किसान के परिवार से संबंध रखता है, जिसके पूर्वज अपना काम बदलकर भंगी बन जाते है और इसीलिए बक्खा भी भंगी परिवार का ही माना जाता है। इस उपन्यास का परिवेश ब्रिटिशकालीन समाज के यथार्थ, उसमें व्याप्त कर्मकांड, छुआछूत भावना और स्त्री-शोषण को चित्रित करता है। यह उपन्यास बक्खा के एक पूरे दिन के बिताए गए कुछ अच्छे-बुरे अनुभवों को बयान करता है। वह शहरी हिंदू और अभिजात समाज का भांडाफोड़ करता है। प्रेमचंद की तरह मुल्कराज आनंद ने कहीं-न-कहीं शहर के प्रति बक्खा के मोहभंग को दिखाया है। प्रेमचंद ने *'गोदान'* में यह मोहभंग गोबर के माध्यम से दिखाया है।

मुल्कराज आनंद ने 'अनटचेबल' उपन्यास के द्वारा समाज के उस वर्ग के प्रति

मानवीयता, संवेदनशीलता और सहानुभूति की भावना को बिना किसी राजनीतिक लोभ-लाभ के बनाए रखा। उपन्यास के अंत में, उन्होंने जातिवाद या छुआछूत की भावना का समाधान शौचालय की सफाई के रूप में तकनीकी मशीनों के रूप में प्रस्तुत किया। आनंद की इस विचारधारा का श्रेय कहीं-न-कहीं महात्मा गांधी को जाता है। गांधी जी का यह मानना था कि तकनीकी मशीनों के आ जाने से समाज से छुआछूत की भावना खत्म की जा सकती है; समाज में भ्रातृत्व की भावना जगाई जा सकती है।

उपन्यास में पंडित कालीनाथ, रास्ते में थप्पड़ मारने वाला व्यक्ति, फेंककर रोटी देने वाली औरत, गुलाबो और छोटे बच्चे की माँ एक ऐसे वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो हिंदू समाज में कट्टरता के कारण मानवीय मूल्यों को भूल जाते हैं। उपन्यास में पंडित कालीनाथ समाज के एक ऐसे कुरूप समूह का प्रतिनिधित्व करता है, जो अपनी जाति के नाम पर छुआछूत का ढोल पीटता है, ऊँच-नीच के सभी कर्मकांडों को मानता है लेकिन वहीं वह निम्न जाति की महिला – बक्खा की बहन सोहनी – को वासना की दृष्टि से देखता है।

कालीनाथ सोहनी को मंदिर के आँगन की सफाई के बहाने से बुलाता है और फिर उसके साथ छेड़छाड़ करता है। जब सोहनी विरोध करती है, तो वह चीखता हुआ बाहर आता है कि मुझे भ्रष्ट या अपवित्र कर दिया। भ्रष्ट और अपवित्र तो पंडित कालीनाथ के विचार हैं, जो सोहनी को वासना की दृष्टि से देखते हैं।

समाज में निम्न वर्ग को समाज की गंदगी समझने वाले भूल जाते हैं कि वह भी इनसान है। बक्खा के मन में इस तरह के विचार कई बार उभरते हैं। शहर से वापस लौट कर आने के बाद उसे प्रतीत होता है कि समाज उनसे दिन-रात अपनी गंदगी साफ करवाने का काम कराता है और साथ ही उन्हें गंदा कहता फिरता है। अगर वही लोग तुम्हारी गंदगी साफ करना बंद कर दें तो उस तथाकथित समाज के सारे काम रुक जाते हैं। बक्खा अपने पिता को सोहनी के साथ छेड़खानी, थप्पड़ मारने वाला आदमी और औरत वाली घटना बताते हुए कहता है : "They think we are mere dirt, because we clean dirt." (अछूत, पृष्ठ 89)

एक कट्टर परिवार से होने के बावजूद मुल्कराज आनंद ने 'अनटचेबल' जैसा उपन्यास लिखकर अपने मानव प्रेम को दर्शाया है। हवलदार चरतसिंह न केवल बक्खा को नई हॉकी-स्टिक देता है बल्कि प्यार और स्नेह के साथ बात भी करता है। वह बक्खा से चाय भी मँगवाता है और उसे अपनी चाय में से पीने के लिए भी देता है। इसके अलावा वह अपने हुक्के के चिलम के लिए कोयले लाने के लिए बक्खा को कहता है, जिसे सुनकर बक्खा के मन में कई विचार कौंध जाते हैं :

''बक्खा हक्का-बक्का रह गया। एक हिंदू उसे चिलम में जलता हुआ कोयला लाने का काम सौंप रहा था, जिसे वह अपने हुक्के पर रखकर धूम्रपान करेगा! एक क्षण के लिए उसे ऐसा लगा मानो उसे बिजली का झटका लग गया हो।'' (अछूत, पृष्ठ 94)

ब्रिटिशकालीन भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए यहाँ कई सोसाइटियों की स्थापना की गई थी। ऐसा इसीलिए किया जाता था ताकि समाज के ज्यादा-से-ज्यादा लोग ईसाई धर्म से प्रभावित होकर अपना धर्म परिवर्तित करा लें। ऐसे ही ईसाई धर्म का प्रचार करने वाला कर्नल, जो कि खुद को मुक्ति फौज का पादरी कहता है, बक्खा से मिलता है और उसे ईसा मसीह और ईसाई धर्म की बातें बताने लगता है। उस समय कई निम्नवर्गीय और समाज से उपेक्षित अपना धर्म परिवर्तन कर ईसाई धर्म अपना रहे थे। वही कर्नल बक्खा को बताता है कि ईसा मसीह भेदभाव और छुआछूत में विश्वास नहीं रखते। उनकी नजर में अमीर-गरीब और ब्राह्मण-भंगी में कोई भेद नहीं है। तब बक्खा सोचता है कि इसका मतलब उसकी नजरों में सवेरे वाले पंडित और उसके बीच कोई भेद नहीं है। कर्नल उसे बताता है कि ''राम मूर्तिपूजकों का देवता है।'' (अछूत, पृष्ठ 116)। यह कैसी विडंबना है कि जो कर्नल बक्खा को ईसाई धर्म और ईसा मसीह के बारे में बता रहा है उसी कर्नल की पत्नी बक्खा के लिए यह कहती है कि ''मैं सारा दिन तुम्हारा इंतजार नहीं कर सकती, जबकि तुम इन भंगियों और चमारों के साथ समय गंवाते हो।'' (पृष्ठ 119) भंगियों और चमारों जैसे शब्दों ने बक्खा का मन झकझोर दिया। तब उसे समझ आता है कि निम्न जाति के लिए न तो हिंदू धर्म में कोई स्थान है और न ही ईसाई धर्म में।

मुल्कराज आनंद ने अपने उपन्यास में गांधी जी के विचारों में विरोध भी दिखाया है। वे कहते हैं – ''मैं छुआछूत को हिंदू धर्म का सबसे बड़ा दाग मानता हूँ।'' (पृष्ठ 132) या ''मैंने छुआछूत को कभी पाप नहीं माना।'' (पृष्ठ 133)। गांधी जी की ये दोनों पंक्तियाँ आपस में विरोधाभास उत्पन्न कर रही है। यह कैसे संभव है कि आप छुआछूत को पाप नहीं मानते लेकिन उसे दाग माने। कुछ भी हो, लेकिन गांधी जी के भाषण ने बक्खा को यह सोचने पर मजबूर किया कि उसे अपने व्यवसाय के कारण ही समाज में हीनता का दर्जा मिला है। क्या वास्तव में ऐसा ही है? यदि ऐसा है तो साफ-सुथरा रहने की बात तो डॉ. अंबेडकर भी करते थे। उनके अनुसार निम्न जाति के लोगों को गंदा माँस नहीं खाना चाहिए, साफ-सफाई से रहना चाहिए, पढ़ना चाहिए। डॉ. अंबेडकर ने तो अपने व्यवसाय का त्याग कर दिया था। उन्होंने दो बार पी-एच.डी. भी की, लेकिन फिर भी समाज में हीन दृष्टि से ही देखे गए। कुछ तथाकथित लोगों का तो यह मानना

रहा है कि धोबी के बेटे को धोबी और नाई के बेटे को नाई बनना चाहिए। उनका मानना यह था कि ये लोग तब अपने वंशानुकूल कार्य में दक्ष होंगे।

किसी भी अनूदित कृति में महत्त्वपूर्ण होता है, लक्ष्य भाषा में अनुवाद के दौरान मूल भाषा, समाज, संस्कृति और भाषिक संरचना एवं शैली का अनुवाद ठीक प्रकार से हुआ है या नहीं। यह उपन्यास अंग्रेजी में जरूर लिखा गया किंतु इसका परिवेश, समाज आदि सभी कुछ भारतीय संस्कृति पर आधारित है। इसीलिए इसे उस समाज की शब्दावलियों से विशेष जूझने का मौका नहीं मिला होगा। राजपाल प्रकाशन द्वारा 'अनटचेबल' का अनुवाद 'अछूत' नाम से 2010 में प्रकाशित हुआ। इस संस्करण में मूल पाठ में उद्धृत ई.एम. फॉस्टर की प्रस्तावना का अनुवाद किया गया है। जबकि अंत में मुल्कराज आनंद की महात्मा गांधी से मुलाकात का अनुवाद नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त, इसकी एक अन्य त्रुटि यह है कि 'अछूत' में अनुवादक का नाम कहीं भी नहीं दिया गया है। राजपाल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित कृति में लिखा है कि 'अंतरराष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त उपन्यास का हिंदी अनुवाद'। इसका मुख्य कारण यह होगा कि कई रचनाकार अपनी कृति के अनुवाद में अनुवादक का नाम जान-बूझकर देना नहीं चाहते हैं या फिर राजपाल ने किसी पेशेवर अनुवादक से अनुवाद कराया है, जिसके कारण अनुवादक का नाम नहीं आ सका है।

इस उपन्यास के शीर्षक 'अनटचेबल' का हिंदी अनुवाद 'अछूत' किया गया है। उपन्यास के अनुसार यह शीर्षक सटीक बैठता है। वैसे इस बारे में आपत्ति यह है कि यदि 'अनटचेबल' को 'अछूत' लिखा गया है, तो फिर 'Outcaste' को 'अछूत' लिखने का क्या औचित्य है? अछूत का अर्थ है, जिसे छुआ नहीं जा सकता यानी 'अस्पृश्यता' और Outcaste का अर्थ है, 'जाति बहिष्कृत'। उपन्यासकार जिसे 'outcaste' कह रहे हैं, अनुवादक को उसे 'अछूत' कहने का हक नहीं है। अनुवाद के दौरान इतनी छूट नहीं दी जाती। इसके लिए प्रस्तावित शब्द होगा 'जाति बहिष्कृत' या 'जात बाहर' अर्थात् जिसे अन्य जातियों से बाहर कर दिया गया हो, यही अधिक उपयुक्त होगा।

अनुवादक ने मूल कृति में कोष्ठक या फिर पाद-टिप्पणी में लिखी सामग्री को या तो मुख्य पंक्तियों का अंग बना दिया है या फिर उसे हटा दिया है। उदाहरण के लिए, मूल पाठ की निम्नलिखित पंक्तियाँ और उनका अनुवाद देखिए :

> The tommies had treated him as a human being and he had learnt to think of himself as superior to his fellow outcaste. Otherwise, the rest of the outcastes (with the possible exception of Chota, the leather worker son, who oiled his hair profusely, and parted it like the Englishman on oneside, wore a pair of shorts at hockey and smoke ciggaretes like them; and Ram Charan, the washerman's son who aped Chota and

Bakha in turn) were content with their lot. (page 12)

हिंदी अनुवाद

''अंगरेज सिपाही उसके साथ मानवोचित व्यवहार किया करते थे, इसीलिए बक्खा अपने आपको सभी अछूतों से बेहतर मानने लगा था। मोची के बेटे छोटा और धोबी के बेटे रामचरण को छोड़कर अन्य सब अछूत अपने में संतुष्ट थे। छोटा अपने बालों में ढेर-सा तेल लगाकर अंगरेजों की भाँति एक ओर से माँग निकाला करता था, हॉकी खेलते समय नेकर पहना करता था, अंगरेजों की भाँति सिगरेट फूँका करता था तथा धोबी का बेटा रामचरण छोटा व बक्खा की नकल उतारा करता था।''

मूल पाठ में कहीं नहीं लिखा है कि धोबी का बेटा रामचरण भी असंतुष्ट था, लेकिन अनुवाद में इसे लिखा गया है। यहाँ अनुवादक की अन्य त्रुटि यह है कि 'leather worker' को 'चर्मकार' या 'चमार' बोला जाता है और 'Cobbler' को 'मोची', लेकिन अनुवादक ने 'leather worker' को 'मोची' लिखा है।

इसके अलावा, अनुवादक ने 'Tommies' शब्द को छोड़ दिया है। जबकि यहाँ पर 'टोमीज' शब्द के लिए पाद-टिप्पणी में यह लिखना जरूरी हो जाएगा कि उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटिश मिलिट्री के सिपाहियों को टोमीज कहा जाता था। (पृ. 5) इस आधार पर प्रस्तावित अनुवाद इस प्रकार है :

प्रस्तावित अनुवाद

टोमीज उसे इंसान समझते थे और वह खुद को भी बाकी जाति से बाहर लोगों में ऊँचा समझता था। जाति से बाहर सभी लोग संतुष्ट थे, केवल चर्मकार या चमार का बेटा छोटा नहीं, जो अपने बालों में ढेर सारा तेल लगाता और गोरे साहिब की तरह एक ओर से माँग निकाला करता था तथा हॉकी खेलते समय शॉट्स पहनता और उनकी तरह सिगरेट फूँकता; और धोबी का बेटा रामचरण जो छोटा और बक्खा की नकल उतारता।

एक अन्य स्थान पर अनुवादक ने पाद-टिप्पणी में दिए हुए कुछ अंश को हटा दिया। जैसे चरतसिंह वाले प्रसंग में :

Charat Singh was feeling kind, he did not relax the grin which symbolised two thousand years of racial and caste superiority. (page 19)

पाद-टिप्पणी में दिया गया है :

The Brahmins, the Kshatriyas, the two upper castes in Hindu society justify their superiority by asserting that they have earned their position by

the goods deeds of multiple lives. (page 19)

अनूदित कृति में अनुवादक ने सिर्फ यही लिखा है कि :

''चरतसिंह नरम पड़ गया था। हालाँकि वह उस मुस्कुराहट को नहीं रोक सका जो पिछले छह हजार वर्षों से जात-पात की श्रेष्ठता का प्रतीक बनी हुई है।'' (अनूदित पाठ, पृ. 11)

मूल में कहीं भी 'जात' का जिक्र नहीं है। हाँ 'जाति' का जिक्र जरूर है। 'जात' का अर्थ है – 'किसी को उसकी औकात दिखाना' और 'जाति' का अर्थ है – 'caste'।

ऐसे कई प्रसंगों में अनुवादक से चूक हुई है। इसी प्रकार समाज-विशेष के सांस्कृतिक परिवेश की जानकारी देने वाले सामाजिक-सांस्कृतिक शब्दों के अनुवाद को भी देखा जा सकता है। यानी इस पर भी विचार कर सकते हैं कि अनुवादक ने खान-पान, पहनावे, संस्कृति, पर्व-त्यौहार, यहाँ तक कि गालियों का अनुवाद किस प्रकार किया है :

मूल	**अनुवाद**	**प्रस्तावित अनुवाद**
Oye, lover of your mother	माँ के लाडले	ओए, माँ के प्यारे
Under Patches, Ochre coloured quilt	गेरुए रंग की पैबंद लगी रजाई	गेरुए रंग की थिगलियों वाली रजाई
White Sahibs	ऊँचे लोग	सफेद साहिब/गोरे साहिब
Trousers	पैंट	ट्रॉउजर
Carpet and Blanket	चटाई और कंबल	कालीन और कंबल
Brass Jug	लोटा	ताँबे का जग / लोटा
A round white cotton skull cap	सफेद गोल टोपी	सफेद गोल सूती टोपी
Tool	हथियार	औजार
Old Bania	बूढ़ा सूदखोर	बूढ़ा बनिया
Apron	ओढ़नी	पेटबंद या एप्रन

इसी प्रकार, 'And yet no caste hindu seems to be near'. (p. 30) वाक्य का हिंदी अनुवाद 'अभी तक कोई भी सवर्ण हिंदू कुएँ के पास नहीं आया।' (पृ. 20) अनुवाद किया गया है। जबकि इसका अनुवाद निम्नलिखित प्रकार से किया जाना चाहिए था :

प्रस्तावित अनुवाद : ''अभी तक कोई भी हिंदू नजर नहीं आया।''

इसके अतिरिक्त कुछ गीतों का अनुवाद भी इस उपन्यास में किया गया है। इनमें भी कोई न कोई कमी खलती है। उदाहरण के लिए, निम्नलिखित गीत, उसका अनुवाद

और प्रस्तावित अनुवाद देखिए :

O Calvary ! Oh Calvary
It was for me that Jesus died
On the cross of Calvary (p. 143)

× × ×

ओ कलवारी! ओ कलवारी!
ईसा मेरे लिए ही मर गया था
कलवारी के सलीब पर। (पृ. 115)

प्रस्तावित अनुवाद

ओ कलवारी! ओ कलवारी!
वो मैं ही हूँ जिसके लिए ईशू मरे
कलवारी की सूली पर।

इसके अतिरिक्त अनुवादक ने शब्दों की वर्तनी और वाक्य-संरचना में भी कई त्रुटियाँ की हैं। मुद्रित पाठ में चंद्रबिंदु और अनुस्वार का अंतर नहीं है। प्रकाशक का दायित्व है कि वह वर्तनी की एकरूपता, मानक हिंदी को ध्यान में रखकर कृति को प्रकाशित करे, जिसका इसमें चिंत्य अभाव है। अनूदित उपन्यास की वाक्य संरचना में भी संयोजन का अभाव स्पष्ट दिखाई देता है। कहीं-कहीं शब्दों के अर्थ को अलग ही तरह से लिखा या निकाला गया।

यदि अनुवाद की दृष्टि से देखा जाए तो मुल्कराज आनंद के मूल 'अनटचेबल' के साथ अनूदित 'अछूत' न्याय करने में असफल रहा है। अनुवाद बहुत स्वीकार्य नहीं है और इस बात को भी रेखांकित किए जाने की जरूरत है कि अनुवादक या प्रकाशक दूसरे संस्करण को प्रकाशित करते समय इस ओर ध्यान दें ताकि अनूदित उपन्यास भी मूल की भाँति मूल्यवान बन सके। सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद करते समय अनुवादक को अपनी सृजनात्मकता दिखाने का पूरा अधिकार होता है, लेकिन उसे यह अधिकार नहीं होता कि वह अनुवादक के दायित्व को भूल जाए या पूर्वाग्रह से ग्रसित रहकर अनुवाद कार्य करे। 'अनटचेबल' की तुलना करने पर यह कहा जा सकता है कि अनूदित उपन्यास 'अछूत' में अनुवादक ने काफी हद तक स्वतंत्रता के बदले स्वच्छंदता ली है।

❑

मनोरमा

'कर्मभूमि' के अंग्रेजी अनुवाद : सांस्कृतिक पदों का तुलनात्मक विवेचन

'कर्मभूमि' 1932 ई. में प्रेमचंद द्वारा लिखा गया एक ऐसा उपन्यास है जिसमें तत्कालीन राष्ट्रीय-सामाजिक मुद्दों को पूरी संजीदगी और संवेदना के साथ रेखांकित किया गया है। प्रेमचंद जहाँ राष्ट्र चेतना के रूप में राष्ट्रीय पटल पर घटने वाली प्रत्येक घटना के प्रति सजग थे वहीं उनकी विश्वचेतना 1929-30 की आर्थिक मंदी के दुष्प्रभावों से भी अछूती नहीं थी।

'कर्मभूमि' में विद्यमान संवदेना को विषम भाषा-भाषी पाठकों तक संप्रेषित करने हेतु प्रो. रीतारानी पालीवाल ने 2004 में इसका अंग्रेज़ी अनुवाद किया जो फ्रैंक ब्रॉस एंड कंपनी द्वारा प्रकाशित किया गया तथा इसी का एक अन्य अंग्रेज़ी अनुवाद ललित श्रीवास्तव ने किया, जो ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा 2006 में प्रकाशित हुआ। प्रो. रीतारानी पालीवाल एक प्रतिष्ठित अनुवादविद्, कवयित्री और आलोचक हैं जबकि ललित श्रीवास्तव जीवविज्ञान जगत से जुड़े एक प्रसिद्ध व्यक्तित्व हैं। वे कनाडा के सिमोन फ्रेजर विश्वविद्यालय में बायोलॉजिकल विज्ञान विभाग में प्रोफ़ेसर हैं। प्रेमचंद के 'कर्मभूमि' उपन्यास का अंग्रेज़ी अनुवाद इनका पहला साहित्यिक कार्य है।

'कर्मभूमि' में हिंदी तथा बनारस के आसपास के क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा और संस्कृति को विशेष अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। परंतु देखना यह है कि इस विशिष्टता और सजीवता का दोनों अनुवादकों ने किस सीमा तक पालन किया है।

'कर्मभूमि' में धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक इत्यादि विभिन्न परंपरागत शब्द हैं। कुछ पद हिंदू धर्म से संबंधित हैं तो कुछ मुस्लिम धर्म से। भारत में हिंदू-मुस्लिम महज़ एक शब्द नहीं है बल्कि ये दो अलग-अलग संस्कृतियों को समाहित किए हुए हैं।

विभिन्न संप्रदायों की धार्मिक मान्यताएँ अलग-अलग होती हैं। जब अनुवादक स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में अनुवाद करता है, तब बहुत हद तक यह संभव है कि अनुवादक इन विभिन्नताओं को न समझ सके। यदि समझ भी जाए तो सीमित शब्द संपदा के कारण वह इन अंतरों को न स्पष्ट कर सके। जैसे मूल पाठ में दिए गए 'सिजदा', 'नमाज', 'पूजा' का अनुवाद श्रीवास्तव जी ने *praying, pray, puja* किया है। परंतु 'सिजदा', 'नमाज' और 'पूजा' तत्वतः एक ही होकर आपस में भिन्न हैं क्योंकि 'सिजदा' मुस्लिम संस्कृति से संबंध रखता है जिसका तात्पर्य है ईश्वर के सामने सिर झुकाना तथा 'नमाज' का मतलब है दिन में पाँच वक़्त खुदा की इबादत करना। 'पूजा' हिंदू धर्म से संबंधित है, जिससे साधारणतः ईश-उपासना का बोध होता है। डॉ. रीतारानी पालीवाल ने इनके लिए *Sizda, Namaz, pooja* शब्दों का प्रयोग किया है। वहीं ललित श्रीवास्तव ने 'पूजा' शब्द को *puja* द्वारा प्रतिस्थापित कर अपने शब्द संग्रह में *act of worship* के द्वारा समझाया है।

ऐसे ही कुछ अन्य शब्द जैसे 'रोजा' एवं 'यज्ञोपवीत' का अनुवाद श्रीवास्तव ने *fast, sacred thread ceremony* किया है, 'रोजा' शब्द का श्रीवास्तव जी ने जहाँ लक्ष्य भाषा में अनुवाद किया है वहीं डॉ. पालीवाल ने इस शब्द को छोड़ दिया है। हालाँकि श्रीवास्तव जी ने *fast* लिखकर पाठकों के लिए सुविधा तो प्रदान कर दी है लेकिन यह शब्द 'रोजा' के महत्त्व को बयाँ करने में सक्षम नहीं है क्योंकि रोजा एक कठिन संयम वाला व्रत है जो मुस्लिम धर्म से जुड़ा है जबकि *fast* शब्द से सामान्यतः उपवास या व्रत का संकेत मिलता है जो किसी भी धर्म से संबंधित हो सकता है। 'यज्ञोपवीत' शब्द का अनुवाद, डॉ. पालीवाल ने *janeu (thread ceremony)* तथा श्रीवास्तव ने *sacred thread ceremony* किया है। पालीवाल ने जहाँ *janeu* लिखकर कोष्ठक में व्याख्यापरक शैली में समझाया है वहीं श्रीवास्तव ने भी व्याख्यात्मक अनुवाद शैली को अपनाया है।

पालीवाल तथा श्रीवास्तव ने जातिसूचक पदों, जैसे कि 'चमार', 'ब्राह्मण', 'कहार' का लिप्यंतरण किया है। श्रीवास्तव ने अधिकांश जातिसूचक शब्दों के बारे में शब्द-संग्रह में समझाया है, जबकि पालीवाल ने नहीं। जातिसूचक पदों के अनुवाद में अनुवादक को अत्यंत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यदि इन पदों का केवल लिप्यंतरण कर दिया जाए तो विषम सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश वाला व्यक्ति उन्हें नहीं समझ पाएगा क्योंकि उनके समाज में जाति-व्यवस्था नहीं पाई जाती है और यदि इनके समतुल्य लक्ष्य भाषा में अनुवाद कर दिया जाए तब अनूदित कृति में प्रवाह के प्रभावित होने की संभावना रहती है। उदाहरणार्थ 'ओझा' तथा 'पंडा' शब्दों को देखा जा सकता है। 'ओझा' एक झाड़-फूँक करने वाला व्यक्ति होता है तथा 'पंडा' धार्मिक कर्मकांडों से

संबद्ध होता है। श्रीवास्तव जी ने प्रभावधर्मी अनुवाद की शैली का प्रयोग करते हुए 'ओझा' के लिए *occultist* शब्द का प्रयोग किया है जबकि पालीवाल जी ने पाठधर्मी अनुवाद की शैली का प्रयोग करते हुए *ojha* शब्द का ही प्रयोग किया है और कोष्ठक में *one who does treatment through magical charms* लिखकर समझाने का एक सफल प्रयास किया है, साथ ही साथ उन्होंने 'पंडा' शब्द को जस का तस *panda* रख दिया है तथा कोई पाद-टिप्पणी नहीं दिया है जबकि श्रीवास्तव ने विदेशी संस्कृति के अनुरूप *acolyte* अनुवाद किया है। श्रीवास्तव ने 'जमींदार' तथा 'मुनीम' के लिए उपर्युक्त शैली की ही तरह प्रभावधर्मी शैली का प्रयोग करते हुए निम्न प्रकार से अनूदित किया है। 'जमींदार' के लिए 'landlord' तथा 'मुनीम' के लिए 'clerk' लिखा है। जबकि पालीवाल जी ने श्रीवास्तव जी से भिन्न शैली का प्रयोग करते हुए इन शब्दों का लिप्यंतरण किया है। ताकि भारत की सांस्कृतिक महक बनी रहे, वहीं श्रीवास्तव ने कुछ शब्दों का अनुवाद लक्ष्य भाषा के शब्दों से अंतरण के रूप में किया है।

'कर्मभूमि' में प्रसंगवश हिंदी महीनों के नामों का भी उल्लेख है। हिंदी महीनों के नाम और अंग्रेज़ी महीनों के नाम में महत्त्वपूर्ण अंतर यह है कि हिंदी महीने अंग्रेज़ी महीने के मध्य से आरंभ होते हैं। अतः इस छोटी-सी बात को न समझ सकने के कारण श्रीवास्तव ने मूल पाठ के (पृष्ठ संख्या 17) के 'माघ' का अनुवाद *March* किया, जो कि ग़लत अनुवाद है। यहाँ दिसंबर या जनवरी का प्रयोग उचित होता। वहीं उन्होंने मूल पाठ के 'माघ' (पृष्ठ संख्या 72) का अनुवाद *Magh* ही किया है। इसी प्रकार मूल पाठ के 'जेठ' शब्द (पृष्ठ संख्या 211) का अनुवाद इन्होंने*July* किया और 'सावन', 'असाढ़', 'कार्तिक' 'फागुन', 'पूस' का अनुवाद क्रमशः *Saavan, Asarh, Kartik, Phagun, Poos* किया। श्रीवास्तव जी ने 'शब्द संग्रह' में अनुवाद में आए हुए हिंदी महीनों के नाम पर परिचयात्मक टिप्पणी प्रस्तुत की है। डॉ. पालीवाल के अनुवाद विश्लेषण से स्पष्ट है कि मूल पाठ के 'माघ' शब्द पृष्ठ संख्या 17 का अनुवाद *Magh* किया – तथा पृष्ठ संख्या 72 पर 'माघ' शब्द का अनुवाद नहीं किया है। वहीं पालीवाल ने 'सावन' का अनुवाद *Sawan* किया है तथा अन्य महीनों के नाम का अनुवाद ही नहीं किया है।

'कर्मभूमि' के दोनों अंग्रेज़ी अनुवादों के आधार पर किए गए पारंपरिक शब्दों के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट है कि परंपरागत शब्दों के लिए प्रस्तुत किए गए अनुवाद में प्रेमचंद की शैली का अनुसरण करने का प्रयत्न किया गया है, परंतु किसी भी अनूदित पाठ में इसका प्रतिफलन नहीं हुआ है। कारण यह है कि दोनों अनुवादकों ने अपने व्यक्तित्व एवं शैली तथा लक्ष्य भाषा की प्रकृति के अनुरूप अनुवाद किया है। पारंपरिक शब्दों के संबंध में यह सवाल भी महत्त्वपूर्ण है कि क्या अनुवादकों की शैली के निर्धारण

में, अनूदित कृतियों के पाठकों का भी प्रभाव रहा है? इसका उत्तर अनूदित कृतियों में पारंपरिक शब्दों के अवलोकन तथा उनके तुलनात्मक अध्ययन से मिल जाता है। रीतारानी पालीवाल का अनुवाद जहाँ अंग्रेज़ी भाषी भारतीय पाठकों के लिए किया गया प्रतीत होता है वहीं ललित श्रीवास्तव का अंग्रेज़ी भाषी विदेशी पाठकों के लिए क्योंकि इन्होंने परंपरागत शब्दों की विशद् व्याख्या की है, जिससे आंग्ल-भाषी विदेशी व्यक्ति भारतीय परंपरा से परिचित हो सकें।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि पारंपरिक शब्दों के अनुवाद में अनुवादकद्वय ने किसी एक निश्चित शैली या सिद्धांत का प्रयोग नहीं किया है। जहाँ कहीं भी अननूद्यता की स्थिति उत्पन्न हुई, वहाँ दोनों अनुवादकों ने इस प्रकार के शब्दों का लिप्यंतरण किया। यदि किसी एक अन्य शब्द का पालीवाल ने पाठधर्मी अनुवाद किया तो श्रीवास्तव ने उसी शब्द का प्रभावधर्मी। जबकि किसी अन्य शब्द हेतु श्रीवास्तव ने पाठधर्मी तथा पालीवाल ने प्रभावधर्मी या फिर दोनों ने एक जैसी शैली का प्रयोग किया।

प्रेमचंद और उनकी कृति 'कर्मभूमि' भारतीय मिट्टी की सांस्कृतिक उपज है। सांस्कृतिक तत्त्वों की दृष्टि से देखा जाए तो सर्वाधिक सांस्कृतिक तत्त्व प्रेमचंद की रचनाओं में ही मिलते हैं। इसलिए इनकी रचनाओं का लक्ष्य भाषा में अनुवाद के लिए स्रोत भाषा की संस्कृति की गहरी समझ अपेक्षित है। इनकी कृतियों के अनुवाद की सफलता-असफलता इन सांस्कृतिक तत्त्वों के सफल अनुवाद पर ही निर्भर होती है।

भाषा, संस्कृति को अभिव्यक्ति प्रदान करती है और संस्कृति, भाषा को समृद्ध और समुन्नत करती है। अतः भाषा और संस्कृति एक-दूसरे के पूरक हैं। संस्कृति, भाषा से अभिन्न रूप से संबंधित है, इसे भाषा से अलग नहीं किया जा सकता है। ऐसे में इस बात की संभावना ज्यादा रहती है कि इसमें सांस्कृतिक तत्त्वों को विशेष रूप से अभिव्यक्ति प्रदान की गई हो।

'कर्मभूमि', प्रेमचंद की अन्य कृतियों की ही तरह सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रचना है। समस्या यहीं प्रारंभ होती है, क्योंकि जो कृति सांस्कृतिक संदर्भ से जितनी ज़्यादा समृद्ध होगी उसके अनुवाद में अनुवादक को उतनी ही ज़्यादा परेशानी का सामना करना पड़ेगा। 'कर्मभूमि' सामाजिक-सांस्कृतिक उद्धरणों, लोकोक्तियों, मुहावरों, शब्दों से भरी पड़ी है। इसमें हिंदू-मुस्लिम संबंधी धार्मिक मान्यताएँ, उनके रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन का पूरा ब्यौरा विद्यमान है। इन सब के कारण यह कृति सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट हो जाती है; परंतु यही विशिष्टता जहाँ एक ओर इस कृति के प्रति हमारा दृष्टिकोण विशिष्ट बनाती है, वहीं दूसरी और यह अनुवाद कार्य को दुष्कर बना देती है।

'कर्मभूमि' में धर्म, रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज संबंधी अनेक शब्दों का प्रयोग

में हुआ है। उपन्यास के दूसरे भाग के प्रथम परिच्छेद में प्रयुक्त कुछ शब्द सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जैसे-बनकट की टट्टियाँ, चमरौधे जूते, पोटली इत्यादि। बनकट की टट्टियाँ' का अनुवाद श्रीवास्तव ने व्याख्यात्मक शैली में करते हुए *The doorways are made of wood and thatch* किया जो विषम सांस्कृतिक व्यक्ति को 'स्ट्रक्चर' तो ज़रूर बताता है किंतु संस्कृति से परिचय नहीं कराता है।'बनकट' के लिए श्रीवास्तव ने *wood* और 'टट्टियाँ' के लिए *'thatch'* अनुवाद किया है। *wood* शब्द से सामान्य रूप 'लकड़ी' ध्वनित होता है जबकि 'बनकट' अपने आप ही उगने वाली एक वनस्पति है, जो गाँव-देहातों में बहुत उपयोगी होती है। चूँकि इस प्रकार के पदों का सीधा-सीधा अनुवाद संभव नहीं है, अतः अनुवादक या तो लक्ष्य भाषा में स्रोत भाषा के समतुल्य शब्दों का प्रयोग करता है या फिर ऐसे शब्दों का लिप्यंतरण करता है; अगर इससे भी अनुवाद में सहायता नहीं मिलती तो वह इन शब्दों को छोड़ देता है। अगर दोनों अनुवादकों के अनुवाद दृष्टिकोण की तुलना की जाए तो उनमें कुछ सम और विषम बिंदु उभर कर सामने आते हैं, यथा- 'चमरौधे जूते' का अनुवाद पालीवाल ने *chamaraudha shoes* किया तथा श्रीवास्तव ने अपने परिवेशगत आग्रहों के कारण तथा लक्ष्य भाषा में स्रोत भाषा की समस्त सामग्री को उपलब्ध कराने की अपनी प्रतिबद्धता के कारण (यह इनके अनुवाद को पढ़कर प्रतीत होता है) इसके लिए *cheap shoes* अनुवाद किया, जो श्रीवास्तव के प्रभावधर्मी अनुवाद की शैली को दर्शाता है।

इसी प्रकार 'मोटा कुरता' और 'धोती' के लिए पालीवाल ने *thick kurta* और *dhoti* अनुवाद करने के लिए क्रमशः आंशिक लिप्यंतरण और लिप्यंतरण का सहारा लिया, जबकि श्रीवास्तव ने 'मोटा कुरता' के लिए *kurta of coarse fabric* तथा 'धोती' का लिप्यंतरण किया। 'मोटा कुरता' का लिप्यंतरण के साथ उन्होंने व्याख्यात्मक शैली में अनुवाद प्रस्तुत किया है। इसी तरह उन्होंने 'पोटली' का अनुवाद *small bundle* किया है, जो मूल कृति के 'पोटली' का अंग्रेज़ी में समतुल्य शब्द है। 'पोटली' के लिए *bale* शब्द का प्रयोग भी किया जा सकता था। यहीं 'लँगोटी' का अनुवाद भी देखने योग्य है—''अगर तुम्हारे धर्म-मार्ग पर चलता, तो आज मैं भी लँगोटी लगाये घूमता होता, तुम भी यों महल में बैठकर मौज न करते होते।''[1]

उपर्युक्त हिंदी की पंक्तियों में *'लँगोटी'* का जो भाव उभरकर सामने आ रहा है वह है – बहुत ग़रीब। इस संदर्भ में अगर देखें तो ललित श्रीवास्तव का *dirt poor* अनुवाद उचित प्रतीत होता है। परंतु अगर शाब्दिक दृष्टि से देखा जाए तो *'लँगोट'* एक तद्भव शब्द है जिसका तत्सम रूप *'लिंगपट्ट'* होता है, जो कि भारत में ब्रह्मचारी पुरुषों द्वारा धारण किया जाने वाला अधोवस्त्र है। किंतु इन पंक्तियों में 'लँगोट' का प्रयोग शाब्दिक

अर्थ में नहीं किया गया है बल्कि यहाँ इसे ग़रीबी के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

सांस्कृतिक संदर्भ में दो अन्य शब्द 'चिकन' और 'निकाह' अनुवाद की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। चिकन, फ़ारसी शब्द चिकिन से बना है जिसका अर्थ है – ''एक प्रकार का कशीदा, जो रेशम या सूत से कपड़े पर काढ़ा जाता है।''[2] इस प्रकार चिकन का कार्य एक कला है। यह वस्त्र पर की जाने वाली कशीदाकारी का बढ़िया नमूना है। चूँकि यह संस्कृति विशेष से संबद्ध पद है, इसलिए इसके अनुवाद में दोनों अनुवादकों को कठिनाई का सामना करना पड़ा है। इसीलिए पालीवाल जी ने 'चिकन की साड़ी' का लिप्यंतरण अंग्रेज़ी में *chikan sari* किया है। यह मूल पाठ के प्रवाह को बनाए रखने में तो सक्षम है, परंतु चिकन क्या है? इसे संप्रेषित करने में अक्षम है। पालीवाल जी ने इसके लिए कोई पाद-टिप्पणी भी प्रस्तुत नहीं की है। वहीं श्रीवास्तव जी ने 'चिकन की साड़ी' का अनुवाद *Muslin sari* किया है। यहाँ *muslin* का अर्थ मलमल है, जो चिकन से सर्वथा भिन्न है। मलमल, रेशमी वस्त्र का एक प्रकार है, जबकि चिकन, कशीदाकारी का उदाहरण है। ऐसे में श्रीवास्तव द्वारा 'चिकन' के लिए *muslin* का प्रयोग उनकी सामान्यीकरण की प्रवृत्ति को दर्शाता है। फलतः अनुवाद त्रुटिपूर्ण हो गया है। इस समस्या के निदान हेतु इन्हें 'चिकन' शब्द का ही प्रयोग करना चाहिए था और इसे पाठ के अंत में टिप्पणी द्वारा समझाना चाहिए था।

सांस्कृतिक पद 'गंगा स्नान' का अनुवाद रीतारानी पालीवाल द्वारा *Ganga snan* करना उचित ही है, क्योंकि इस प्रकार के पदों का लिप्यंतरण के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं होता है। उन्होंने एक स्थान पर 'गंगा-स्नान' का लिप्यंतरण किया और एक अन्य स्थान पर निजी संस्कृति के अनुरूप लक्ष्य भाषा में इस पद का अनुवाद *dip in Ganga* किया। श्रीवास्तव जी ने भी इस शब्द का अनुवाद दो स्थानों पर दो तरीक़े से किया है, एक स्थान पर श्रीवास्तव जी ने निजी संस्कृति के अनुरूप लक्ष्य भाषा में dip in the Ganges अनुवाद किया है जबकि दूसरे स्थान पर अंग्रेज़ी संस्कृति के अनुरूप bathing in the Ganges अनुवाद किया। प्रथम अनुवाद का *dip* द्वितीय अनुवाद के *bathing* की तुलना में भारतीय संस्कृति के अधिक निकट है, क्योंकि भारत में 'गंगा स्नान' का तात्पर्य गंगा में डुबकी लगाना ही होता है न कि स्नान करना। इस अर्थ में *dip in Ganges* भारतीय संस्कृति को अधिक व्याख्यायित कर रहा है।

ऐसे ही एक अन्य सामाजिक पद 'बारात' का लिप्यंतरण *baraat* करना पालीवाल द्वारा ठीक ही है, जबकि इसी पद का अनुवाद ललित श्रीवास्तव द्वारा *wedding party* करना कुछ अटपटा प्रतीत होता है। क्योंकि बारात का संबंध वर पक्ष की शोभायात्रा से है, जबकि *wedding party* का शाब्दिक अर्थ है – विवाह समारोह, जो बारात के अर्थ

को संप्रेषित नहीं कर पा रहा है। यदि यहाँ *wedding party* के स्थान पर *groom party* का प्रयोग किया जाए तो बारात शब्द का भाव ज़्यादा व्यंजित होगा।

सांस्कृतिक शब्दों के आधार पर इस वाक्य को भी देखा जा सकता है – ''चालीस वर्षों में ऐसा शायद ही कोई दिन हुआ हो कि उन्होंने संध्या समय की आरती न ली हो और तुलसी-दल माथे पर न चढ़ाया हो। एकादशी को बराबर निर्जल व्रत रखते थे।''[3]

यहाँ 'आरती', 'तुलसी-दल', 'एकादशी', शब्द सांस्कृतिक दृष्टि से विशिष्ट हैं, जिनका पालीवाल ने अनुवाद नहीं किया है। इस वाक्य के संस्कृतिनिष्ठ अनुवाद में अनुवादक ललित श्रीवास्तव को वह सफलता नहीं मिली, जो मिलनी चाहिए थी। 'आरती' शब्द ईश उपासना की प्रक्रिया में किया जाने वाला एक धर्मानुष्ठान है, जिसमें रूई की बत्ती बनाकर तथा देशी घी में जलाकर या फिर कपूर को जलाकर अपने इष्टदेव के सम्मुख घुमाया जाता है। जहाँ हिंदी पंक्तियों में आरती लेना ध्वनित हो रहा है वहाँ अंग्रेज़ी की अनूदित पंक्तियों में *performed aarti* से 'आरती करना' ध्वनित हो रहा है। अनूदित कृति, मूल कृति की इस ध्वनि से अछूती रह गई है, क्योंकि 'आरती लेना' का अर्थ है कि कोई अन्य व्यक्ति या पुजारी द्वारा ईश्वर की आरती करना। तत्पश्चात् उपस्थित लोगों द्वारा आरती का श्रद्धानमन करना।

इसी प्रकार 'एकादशी' का हिंदू धार्मिक संस्कृति में बहुत महत्त्व है। मान्यतानुसार एकादशी व्रत विष्णु भगवान को प्रसन्न करने के लिए रखा जाता है, परंतु इससे समस्त देवतागण भी प्रसन्न होते हैं। एकादशी माह में दो बार पड़ती है और प्रत्येक एकादशी अपने फलानुसार, अलग-अलग नाम की होती है जैसे – पुत्रदा, सफला, निर्जला इत्यादि। इनमें से निर्जला एकादशी जेठ माह में होने वाली सबसे महत्त्वपूर्ण *एकादशी* है। इस समय प्रभु विष्णु योगनिद्रा में नहीं होते हैं। अनुवादक ललित श्रीवास्तव ने उपर्युक्त अंग्रेज़ी की पंक्तियों में 'एकादशी' का लिप्यंतरण *Ekadashi* किया है तथा शब्द संग्रह में *eleventh day of lunar fortnight* के द्वारा व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। परंतु यह व्याख्या एकादशी के महत्त्व को स्पष्ट करने में पूर्ण रूप से सक्षम नहीं है। यदि अनुवादकों ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की होती तो ज़्यादा ठीक होता, यथा –

The eleventh day in the fortnight of a lunar month which is important for Hindu because they believe if they would fast without water their wish fulfil.

जहाँ पालीवाल ने संपूर्ण वाक्य का अनुवाद नहीं किया है, वहीं श्रीवास्तव ने 'एकादशी' के लिप्यंतरण तथा शब्द संग्रह में एक अस्पष्ट व्याख्या के द्वारा अपने कार्य को पूर्ण मान लिया है।

इसी प्रकार 'तुलसीदल' शब्द को लिया जा सकता है, जिसका अनुवाद पालीवाल तथा श्रीवास्तव द्वारा क्रमशः *tulasi leaves* और *tulsi leaves* किया गया है। जिनकी वर्तनी में भिन्नता के अलावा अन्य कोई अंतर नहीं है। अनूदित पंक्तियों से यह पूर्ण

रूप से स्पष्ट हो रहा है कि *tulsi leaves* पवित्र होती है और मन्दिर में चढ़ाई जाती है। परंतु तुलसीदल का नाम लेते ही जो चित्र हमारी आँखों के सामने उभरकर आता है वैसा चित्रण दोनों अनूदित कृतियाँ विषम सांस्कृतिक पाठकों के सामने प्रस्तुत करने में पूर्ण रूप से सफल नहीं हैं और न ही हो सकती हैं। और इसका कारण है – इस प्रकार के पदों का संस्कृतिनिष्ठ होना।

एक अन्य पद 'चरणामृत' के संस्कृतिनिष्ठ होने के कारण रीतारानी पालीवाल ने इस पद का लिप्यंतरण *charnamrit* किया, जबकि ललित श्रीवास्तव ने इसका अनुवाद *holy water* करके चरणामृत का प्रभाव उत्पन्न करने का असफल प्रयास किया है। 'चरणामृत' का शाब्दिक अर्थ पवित्र जल होता है, जबकि इसके मूल में यह अर्थ निहित है कि उसके चरण का अमृत है जो दूध, दही, गंगाजल, घी, तुलसीदल, मेवों, सुगंधित द्रव्य से निर्मित करके इष्टदेव के चरणों में चढ़ाया जाता है और प्रसादस्वरूप भक्तगणों को वितरित किया जाता है। यहाँ श्रीवास्तव द्वारा 'चरणामृत' का अनुवाद holy water गंगाजल की तरफ़ संकेत करता है।

लोकोक्तियों और मुहावरों की दृष्टि से 'कर्मभूमि' एक संपन्न रचना है। अनुवाद एक सर्जनात्मक कृत्य है और मूल में प्रयुक्त कहावत का अनुवाद कहावत में न करके सीधे-सीधे शब्दों में कहना, उस सर्जनात्मक कृत्य को क्षति पहुँचाना है। अतः दोनों अनुवादकों द्वारा मूल कृति में आए हुए लोकोक्तियों और मुहावरों का अनुवाद तथा उनकी मूल कृति से तुलना और अनुवादकों की शैलीगत विशिष्टता की अनदेखी नहीं की जा सकती।

''धोबी का कुत्ता, घर का न घाट का''[4] लोकोक्ति का अर्थ है, जो दो भिन्न पक्षों से जुड़ा रहता है वह कहीं का नहीं रहता। मूल कृति में भी इस लोकोक्ति का यही अर्थ व्यंजित हो रहा है। पालीवाल ने ''A washerman's dog belongs neither here nor there''[5] तथा श्रीवास्तव ने ''A dhobhi's dog belongs neither at home nor at the ghat''[6] शब्दानुवाद के द्वारा इस लोकोक्ति के अर्थ को व्यंजित करने का प्रयास किया है। हिंदी की इस लोकोक्ति के समतुल्य अंग्रेज़ी भाषा में कुछ लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं, यथा – (1) Between two stools and you come to the ground. (2) Neither fish in or fowl. अंग्रेज़ी की इन दोनों लोकोक्तियों का भावार्थ मूल कृति की हिंदी लोकोक्ति के समान है। अतः अनूदित कृतियों में अंग्रेज़ी की इन लोकोक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है। वैसे डॉ. पालीवाल द्वारा इस लोकोक्ति के लिए किया गया अनुवाद जहाँ संप्रेषणीय है वहाँ सटीक और स्वीकार्य भी है।

इसी प्रकार ''अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता''[7] लोकोक्ति का अर्थ यह है कि समूह के द्वारा किया जा सकने वाला कठिन कार्य अकेला व्यक्ति नहीं कर सकता है। इस अर्थ के आलोक में देखा जाए तो दोनों अनुवादकों द्वारा किया गया अनुवाद ठीक

प्रतीत होता है। यद्यपि इन दोनों की शैलियों में भिन्नता अवश्य दिखलाई पड़ती है। श्रीवास्तव ने जहाँ शब्दानुवाद के द्वारा इस लोकोक्ति को अंग्रेज़ी में अनूदित किया है यथा – ''roasting a single chick pea will not explode the oven.''[8] वहीं पालीवाल ने भावानुवाद के माध्यम से लोकोक्ति को अंग्रेज़ी भाषा में अभिव्यक्त किया है – ''alone soldier cannot win the war.''[9] श्रीवास्तव ने हिंदी भाषा की इस लोकोक्ति के अनुवाद के लिए शब्दानुवाद का सहारा लिया। इन्होंने 'चने' के स्थान पर *pea* तथा 'भाड़' के स्थान पर *oven* के प्रयोग द्वारा अंग्रेज़ी भाषा की संस्कृति के अनुरूप मुहावरा गढ़कर अपनी सर्जनात्मक क्षमता का परिचय दिया है। यहाँ पालीवाल द्वारा किया गया अनुवाद मूल के सन्निकट है। दोनों अनुवादकों अंग्रेज़ी संस्कृति के अनुरूप इसका प्रभावशाली अनुवाद किया है। वैसे इससे मिलती-जुलती अंग्रेजी की लोकोक्ति है – United you can what singly you can't. इसके अतिरिक्त भी कई लोकोक्तियों का अनुवाद दोनों अनुवादों में सफलता से किया गया है।

'कर्मभूमि' में प्रेमचंद ने मुहावरों के प्रयोग से उपन्यास की सर्जनात्मकता का विस्तार किया है। 'कर्मभूमि' में प्रेमचंद ने वक्र अभिव्यक्ति हेतु कई मुहावरों का प्रयोग किया है, जिसका अनुवाद दोनों अनुवादकों द्वारा विभिन्न तरीकों से किया गया है। परंतु क्या वे मूल के भावों को पकड़ पाए हैं या फिर उन्होंने त्रुटिपूर्ण अनुवाद किया है। इस हेतु 'खून के घूँट पीना' मुहावरे का उदाहरण दृष्टव्य है, जिसका अर्थ है, 'अत्यधिक क्रोध का आवेग सह लेना'। रीतारानी पालीवाल द्वारा अनूदित "swallowed a sip of his own blood"[10] मुहावरे से भारतीय संस्कृति को जानने-समझने वाला जो अर्थ ग्रहण करेगा यह आवश्यक नहीं है कि वही अर्थ विषम सांस्कृतिक व्यक्ति भी ग्रहण करे। कारण इस अनूदित मुहावरे का शाब्दिक अर्थ खून के घूँट पीना है, जिसे पढ़कर दो अलग-अलग संस्कृतियों से संबंधित व्यक्ति भिन्न-भिन्न अर्थ ग्रहण करेंगे। भारतीय मुहावरों से परिचित व्यक्ति इसका वही अर्थ ग्रहण करेगा जो वास्तव में है। परंतु इस मुहावरे से अपरिचित व्यक्ति इन पंक्तियों से साधारण अर्थ ग्रहण कर सकता है, जो कि *अपना खून पीना* ध्वनित हो रहा है। अनुवादक को शाब्दिक अनुवाद करते समय ऐसी विषम स्थितियों से बचने का प्रयास करना चाहिए। श्रीवास्तव का अनुवाद "swallowed his anger"[11] पालीवाल की तुलना में ज़्यादा स्वीकार्य है, क्योंकि इसका अर्थ है – *गुस्सा पीना* है, जो कि *खून का घूँट पीना* के शाब्दिक अर्थ 'अत्यधिक क्रोध का आवेग सह लेना' का समानार्थी है।

निष्कर्षतः 'कर्मभूमि' के दोनों अनुवादकों ने हिंदी से अंग्रेज़ी में अनुवाद के दौरान, पाठ के अनुकूल अधिकांशतः शब्द और अर्थ की दृष्टि से समान अनुवाद प्रस्तुत किया है। जहाँ अनुवादकों को शब्द और अर्थ की दृष्टि से लक्ष्य भाषा में समतुल्य शब्द नहीं प्राप्त हुए वहाँ उन्होंने भावपरक अनुवाद किया। यदि इससे भी अनुवाद कर्म बाधित

हुआ तो अनुवादकों द्वारा शब्द या वाक्य का लोप कर दिया गया। यह प्रवृत्ति रीतारानी पालीवाल में ज़्यादा दिखाई पड़ती है, जिस कारण इनके द्वारा 'कर्मभूमि' का अंग्रेज़ी अनुवाद मूल कृति की प्रस्तुति प्रतीत होती है। इसे पढ़कर पाठक 'कर्मभूमि' से सिर्फ़ परिचित हो सकता है, लेकिन पूर्ण रसास्वादन नहीं कर सकता है।

यदि पालीवाल द्वारा 'कर्मभूमि' के संक्षिप्तीकरण को नज़रअंदाज़ कर दिया जाए (जो कि उनकी अनूदित कृति का सबसे बड़ा दोष है) तो वह श्रीवास्तव कृत अंग्रेज़ी अनुवाद की तुलना में अधिक संतुलित और पठनीय है। स्मरण रहे, श्रीवास्तव का यह पहला ही साहित्यिक अनुवाद कर्म है जो पूर्ण रूप से दोषरहित तो नहीं परंतु पाठक तक संप्रेषणीय होने के कारण प्रभावशाली है। यहाँ आलोचना के रूप में नहीं बल्कि सुझाव के रूप में कहा जा सकता है कि मूल के प्रभाव को अनूदित कृति में यथारूपेण पहुँचाने के लिए अनुवादक को मूल कृति के प्रति ईमानदार बनना पड़ता है। समग्र रूप से दोनों अनूदित कृतियाँ प्रभावशाली हैं परंतु कहीं-कहीं ऐसा लगता हैं कि यदा-कदा अनुवादकद्वय का मूल पाठ से विचलन हो गया है। साथ ही, अनुवाद के बाद अनिवार्य जाँच या पुनरीक्षण (स्वयं या किसी विशेषज्ञ द्वारा) के कष्ट से दोनों ही अनुवादकों ने किनारा कर लिया है।

❑

संदर्भ

1. कर्मभूमि, प्रेमचंद, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2008, आवृत्ति : 2010, पृ. 33
2. व्यावहारिक उर्दू-हिंदी शब्दकोश, संपा. डॉ. सैयद असद अली, राजपाल एंड संस, 2010, पृ. 112

3-4. कर्मभूमि : प्रेमचंद, पृ. 133 एवं 79

5. *Karambhoomi,* Trans. Dr. Ritarani Paliwal, Frank Bros. of Co. 2004, पृ. 69
6. *Karambhoomi,* Trans. Lalit Srivastava, Oxford India, 2006, Second impression, 2009, पृ. 96
7. कर्मभूमि : प्रेमचंद, पृ. 184
8. *Karambhoomi,* Trans. Lalit Srivastava, पृ. 228

9-10. *Karambhoomi,* Trans. Ritarani Paliwal, पृ. 154 एवं 31

11. *Karambhoomi,* Trans. Lalit Srivastava, पृ. 38

निकोलाई हेलोव
अनु. संतोष खन्ना

जमीन से उखड़ा पेड़

क्या आप मेरा नाम जानना चाहते हैं? मेहरबानी, शुक्रिया। एक वर्ष बीत गया, जब से मैं इस शहर में हूँ, हर रोज इस बैंच पर आकर बैठता हूँ। अभी तक किसी ने मेरा नाम नहीं पूछा। किसी ने भी नहीं? आप सबसे पहले व्यक्ति हैं, कृतज्ञ हूँ आपका। भगवान आपका भला करे। भगवान आपको कभी मेरे जैसे दिन न दिखाए।

यह बात नहीं कि मैं भूखा या प्यासा हूँ। देखने में मैं बिल्कुल भला-चंगा हूँ। एक बेटी है उसका विवाह कर दिया। वह गाँव में रहती है, उसका एक बच्चा है और उसका पति चेयरमैन है। मेरा एक बेटा है जो एक मंत्रालय में नौकरी करता है, क्या कहते हैं उसे? हाँ, इंजीनियर। इंजीनियरिंग में बहुत बड़ी डिग्री प्राप्त की है उसने। कार्यालय की कार उसे ले जाती है, छोड़ जाती है। उसकी पत्नी डॉक्टर है, मोटी तनख्वाह पाती है। उनके घर में चीनी मिट्टी का स्नान टब है, मैं अच्छा खाता हूँ, अच्छा पहनता हूँ, आरामदेह बिस्तर पर सोता हूँ, अलग कमरा है... फिर भी कुछ ठीक नहीं चल रहा, सब गड़बड़ है। मेरा स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिर रहा है। मैं दुबला होता जा रहा हूँ। कुछ भी खाने को मेरा दिल नहीं चाहता। नींद नहीं आती। अजीबोगरीब विचारों का रेला दिमाग में हर समय चक्कर काटता रहता है। मैं किसी को यह सब नहीं बता सकता। यदि मैं बताऊँ तो वे कहेंगे मैं गलत कह रहा हूँ, कहीं कुछ गड़बड़ है।

दूध जैसी छोटी-सी चीज को ही लीजिए। मैं अपने बेटे से कहता हूँ, ''किरचा, दूध लेने मैं आया करूँगा।'' बाहर आने-जाने से आप लोगों को देखते हैं, वे आपको देखते हैं, मिलना-जुलना होता जाता है...समझे?''

''नहीं, मैं कुछ नहीं जानता।'' वह कहता है, ''आप भुलक्कड़ हो, यदि कोई कार आपको कुचल दे तो उसके बाद की समस्याओं से कौन निपटेगा? क्या मैं निपटूँगा? बस

घर में बैठो और आराम करो।'' मैं घर पर ही रहता हूँ। और कर भी क्या सकता हूँ? घर इतना बड़ा है कि आप उसमें घोड़ा दौड़ा सकते हैं। घर साफ और सुंदर वस्तुओं से भरा पड़ा है, सब वस्तुएँ अपने-अपने स्थान पर करीने से सजी हैं, बस मेरा ही दिल नहीं लगता... एक गलीचे के बाद दूसरा गलीचा बिछा है। गलीचे इतने खूबसूरत हैं कि पैर रखते ही मैले होते हैं। लकड़ी का सुंदर फर्श इतना मुलायम कि पैर ही फिसल जाएँ।

''घर में आराम से रहो।'' मेरा बेटा कहता है, ''घर में मन लगाओ, खुश रहो, खाओ-पीयो और सब भूल जाओ।''

मैं पूछता हूँ कि घर में कैसे खुश रहूँ, किसके साथ खुश रहूँ? क्या खाने के कमरे या बर्तन–अलमारियों के साथ खुश रहूँ? बेटा और बहू सुबह से रात तक घर से बाहर रहते हैं। वे सुबह ही चले जाते हैं और शाम को लौटते हैं। वे जब घर लौटते हैं तो रात को सोने के समय तक टी.वी. के सामने आँखे गड़ाए फिल्में देखते रहते हैं और उसके बाद 'शुभरात्रि' कहते हुए सोने चले जाते हैं। पिछले एक वर्ष से भी अधिक समय में हमने आपस में सिर्फ इन्हीं शब्दों का आदान-प्रदान किया है।

जब मेरा पोता घर में था, तब भी कुछ ठीक था। हम आपस में खेलते थे। मैं घोड़ा बनता, वह मेरी पीठ पर चढ़ जाता। दिमाग कुछ शांत रहता, पर क्या बताऊँ मेरी चंडाल बहू – क्षमा करना भगवान – उसने उसे बोर्डिंग स्कूल में दखिल करवा दिया और अब वह केवल रविवार के दिन ही घर आता है। ठहरिए, यह भी तो सुन लें कि उसने अपने बेटे को बोर्डिंग क्यों भेज दिया? इसलिए कि वह मेरी गँवारू भाषा सीख जाता। मैं उसके बोलने-चालने का ढंग बिगाड़ रहा था ना। वैसा नहीं कि मैंने उसे गँवारू या भाषा सिखाई हो, कसम से मैंने वैसा नहीं किया। बस एक छोटा-सा शब्द था। 'चाबुक'। इससे पशुओं को हाँका जाता है। गाँच में हम इस चाबुक कहते हैं। जब मैं और मेरा पोता घोड़ा-घोड़ा खेल रहे थे तो मैंने उसे चाबुक देते हुए कहा :

''जोर से मत मारना।''

उसकी माँ ने मुझे घूरा।

''यह चाबुक-वाबुक क्या है? ऐसे तो उसकी भाषा बिगड़ जाएगी?''

''ऐसे में क्या बुराई है? बड़ी छड़ी को लाठी और पतली को चाबुक कहते हैं। क्या बुराई है ऐसे शब्दों को सीखने में? हो सकता है, कभी उसे इसकी जरूरत पड़ जाए।''

''उसे चरवाहा नहीं बनना। उसे ऐसे शब्द सीखने की जरूरत नहीं। वह स्कूल जाता है, वह वहीं सीखेगा जो जरूरी है, उसे वहाँ आपके 'चाबुक' की जरूरत नहीं पड़ेगी?''

बस इतनी-सी बात पर उसे बोर्डिंग भेज दिया गया। मैंने अपने बेटे किरचा से कहा, ''क्या यह ठीक नहीं होगा कि मैं गाँव लौट जाऊँ तकि लड़का घर में रहे।'' किंतु उसने मुझे बीच में ही टोका, ''नहीं, कभी नहीं। आप वहाँ गाँव में अकेले रहोगे? क्या कहें

गाँव वाले? देखा, कैसा समय आ गया है, पिता पुत्र को भारी हो गया। आप यहाँ आराम से रहो, खाओ-पीयो और किसी बात की चिंता न करो।''

''खाओ... खाओ.... खाओ... पर मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता।'' डिब्बाबंद खाना, डिब्बाबंद गोश्त, डिब्बाबंद चटनी... सभी कुछ डिब्बाबंद...'' अब मेरी बहू ने हर सब्जी, खाने की हर चीज पर चटनी डालना शुरू कर दिया था। उसने जर्मनी में देखा कि वहाँ सब लोग हर चीज के साथ चटनी का सेवन करते हैं। इसलिए उसने चटनी बनाने की मशीन ही खरीद ली, ताकि वह घर में ही चटनी बना सके। जब भी चटनी समाप्त हो जाती वह और तैयार कर लेती, हर रोज चटनी। कोई भी सब्जी हो, या खाने की कोई ओर चीज, सबके साथ चटनी – आप जान ही नहीं सकते कि आप क्या खा रहे हैं। सब में चटनी का स्वाद। दिन-रात! आप इंकार भी नहीं कर सकते, बड़ी तुनकमिजाज औरत है, जल्दी ही गुस्सा कर लेती है।

एक दिन मैंने किरचा से कहा, ''चटनी खाते-खाते मैं मर जाऊँगा।''

''क्यों? क्या हुआ?''

''इससे मेरा पेट दुखने लगा है।''

''नहीं, इससे पेट नहीं दुखता, जरूर आपके पेट में फोड़ा होगा। कल मैं आपको जाँच के लिए ले जाऊँगा और यदि फोड़ा होगा तो उसे कटवा देंगे।''

''ठीक है, मुझे ही कटवा दो।' मैं इसके लिए भी तैयार था। मेरा पेट काट देंगे तो चटनी खाने से तो बच जाऊँगा। एक दिन मैंने लहसुन में नमक और सिरका डाल उसे पीसा। रोज-रोज चटनी खाने के बाद जब मैंने उसे खाया तो उसने मरहम का काम किया। अब मैं कई बार लहसुन पीस लेता। एक दिन लहसुन कुछ ज्यादा ही पिस गया और मैं खिड़की खोलना भूल गया। शाम को जब बहू आई तो उसे लहसुन की गंध आई।

''यह दुर्गंध किस चीज की है?'' उसने पूछा। इसमें छिपाने की कोई बात नहीं थी, मैंने बताया, ''लहसुन की।''

''आप पीछे घर में क्या गड़बड़ करते हैं?''

''थोड़ा लहसुन पीसकर खाया था।''

उसने मुझे बड़ी कड़वी नजर से देखा। जब उसे गुस्सा आता है, न वह चीखती है, न चिल्लाती है और न दाँत पीसती है – वह धीरे-धीरे शांत भाव से बात करती है किंतु उसके शब्द सीधे कलेजे में चाकू से गहरे चुभते हैं। वह बोली,

''बहुत खूब! किरचा और मैंने दुनिया-भर की ये चीजें इसलिए इकट्ठी की हैं तकि आप उन्हें लहसुन की दुर्गंध में बुसा दो! देखो, कपड़ों की अलमारी तक से दुर्गंध आ रही है। मुझे सब फिर से पॉलिश करवाना पड़ेगा। तब तक घर में किसी मेहमान को भी नहीं बुला सकते।'' उसने उस समय केवल अलमारी के सत्यानाश की ही बात कही

थी।

''बहू, आगे से ऐसी गलती नहीं होगी, लहसुन कभी छुऊँगा भी नहीं, वायदा करता हूँ। मैं बस शांति चाहता हूँ।''

हाँ, शांति! पर यह शांति कितनी महंगी थी। दो बार मैं युद्ध में गया हूँ। पहले युद्ध में मैं अग्रिम मोर्चे पर था। दूसरे में डिविजन की सप्लाई ट्रेन में था। युद्ध में मैं मरा नहीं, डरा नहीं, पर मैं आपको बता दूँ कि इस प्रकार की शांति से इंसान आसानी से मर सकता है। पछो, कैसे? किसी को आलीशान मकान में बिना काम अकेला छोड़ दो, उसे दिन-रात चटनी खिलाओ, उससे कभी-कभी बात करो, समझो, वह जल्दी ही मर जाएगा।'' मैंने एक बार किरचा से कहा, ''बाँध से मेरे लिए विलो शाखाएँ ले आना, बैठा-बैठा टोकरियाँ ही बुन दिया करूँगा।''

''बहुत बुन चुके टोकरियाँ, बस अब आराम से बैठो।'' बेटा मेरी स्वर्गवासी पत्नी पर गया है। भगवान उसकी आत्मा को शांति दे। मेरा बेटा जो बात एक बार कह देता है, उससे वह कभी टस से मस नहीं होता – फिर चाहे पिछला साल हो या उससे पिछला, कोई फर्क नहीं पड़ता। जो कहता है, उसे पूरा करता है। इंजीनियर जो ठहरा। उसके लिए दो और दो चार तथा शून्य हमेशा शून्य होता है। मेरे दिमाग को छोटी-छोटी बातें परेशान करती हैं। मुझे नींद नहीं आती। हमारा एक सुखी परिवार है। मुझे वे पिताजी कहते हैं। हम सब इकट्ठे रहते हैं। एक ही मेज पर खाना खाते हैं, किंतु आपस में अनंत दूरी है।

अपने बेटे के नामकरण संस्कार के समय वे उसे मेरा नाम 'इग्नात' नहीं देना चाहते थे क्योंकि बच्चे उसे गैत्यु बुलाने लगेंगे। 'इग्नात' के स्थान पर उन्होंने उसका एक नया नाम रखा, 'क्रासीमीर'। दादा गैत्यू, परदादा गैत्यू और पोता क्रासीमीर। शायद अभी कोई कसर बाकी थी। मेरे बेटे ने भी अपने नाम के साथ 'इग्नातीव' के स्थान पर 'इग्नातीव' कर दिया। टेलीफोन डायरेक्टरी किरा में उसका नाम 'इंजीनियर कीरील इग्नातीव'। टेलीफोन की घंटी बजती है और मैं फोन उठा कर कहता हूँ, ''किससे बात करेंगे?''

''इंजीनियर इग्नातीव से...''

जब वह वापस आया तो उसने कहा, मेरा परिवरिक नाम इग्नातोव है। क्राँति से पहले न्यायालयों में भी यही नाम था। शुक्र करो, तुम विश्वविद्यालय में पढ़-लिखकर आज यहाँ तक पहुँच गए हो। अपने को समझते क्या हो? या तो तुम परिवार का नाम छोड़ दो और राजपत्र में इसकी घोषणा कर दो या इससे सबको बेवकूफ बनाना छोड़ दो।

कोई और समय होता तो वह पलट कर मुझे करारा जवाब देता। लेकिन इस बार उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। मेरी मजबूरी रही कि मैं अपने पोते के नाम के साथ वैसा करने का साहस नहीं जुटा सका और वह क्रासीमीर ही बना रह गया।

ये छोटी-छोटी बातें हैं। कई बार इनसे बड़ी बात भी हो जाती जिससे हृदय छलनी

हो जाता। रात को नींद नहीं आती, विशेषकर रात के दो बजे के बाद यह प्रश्न मुझे हमेशा सताता कि मैं गाँव में अपना घर छोड़ यहाँ सोने के पिंजड़े में क्यों पड़ा हूँ? जब बेटे से पूछता हूँ, मुझे हमेशा यही उत्तर मिलता है, ''अकेले गाँव में क्या करते?'' अब मैं उसे कैसे समझाऊँ कि गाँव में मैं अपने घर में था जहाँ बागों में चेरी थी, कद्दू और प्याज थे। मेरे पास दो बकरियाँ थीं जो मैं-मैं करती थीं। जब मैं थका-हारा घर लौटता और दहलीज के पास बैठता तो वे दोनों अपनी जुबान से मेरा पसीना चाट लेतीं। जब एक बार मेरा बेटा गाँव आया तो उन बकरियों को हलाल कर दिया। इसके लिए मैं आज तक खुद को माफ नहीं कर पाया। जब भी दरवाजा खुलने की आवाज आती, वे मैं-मैं करने लगती थीं और दरवाजा? वह बीज लकड़ी का पुराना दरवाजा था; इतना वजनी कि जब भी खोलो या बंद करो, चरमरा उठता। उसकी चरमराहट कई बार कोयल के स्वर-सी मधुर और कई बार फटे बाँस-सी भद्दी होती। द्वार में जब नमी आ जाती तो वह मेमने की तरह मिमियाता, गर्म मौसम में सूखा होने पर पीपाकार वाद्ययंत्र की तरह बज उठता। दरवाजे के चरमराने के स्वर से मैं बता सकता था कि कब वर्षा होगी और कब मौसम खुला रहेगा। एक बार मैंने मौसम-विज्ञानी से कहा, ''छिड़काव पंप तैयार कर लो, कल बारिश होगी।''

''रेडियो पर तो वैसा नहीं बताया गया।'' उसने कहा।

''तुम अपना रेडियो सुनो, मैं अपना सुनता हूँ, देखते हैं कौन ठीक है।''

तब सचमुच बारिश हुई। उस दिन से मौसम-विज्ञानी हर रोज मेरे पास आकर पूछता, कल या परसों मौसम कैसा रहेगा?''

अब दरवाजे में जंग लग रहा है। उसे कोई खोलता नहीं। कोई सुनता नहीं कि वह क्या कर रहा है, कोई उसे खटखटाता नहीं। एक बार मैंने अपने साले को लिखा कि वे मेरे घर जाकर देखे कि दरवाजा कैसी हालत में है। उसने लिखा, ''मैंने दरवाजे को अच्छी तरह देखा है। वह पहले की तरह ही है, बस अब वह चरमराता या गाता नहीं। बस दाँतों को पीसता और जख्मी कुत्ते-सा भौंकता है। मौसम-विज्ञानी और बाकी सब याद करते हैं तुम्हें।'' मैंने खत बेटे को दिया कि वह भी पढ़ ले कि गाँव में भी मेरी जरूरत है। मैं कोई सूखी टहनी नहीं कि उसे यूँ ही फेंक दिया जाए। जानते हैं उसने क्या कहा?

''आप बुजुर्ग भी बच्चों की तरह होते हो। खुश रहने के स्थान पर हमेशा किसी न किसी बात पर चीखते-चिल्लाते रहते हो।''

यदि आप भी मुझसे बात नहीं करेंगे तब और कौन सुनेगा मेरी बात? मेरी बात सुनने के लिए कोई नहीं है। इस पार्क में भी युवा लोग ताश खेलते हैं, गले मिलते हैं, चुंबन लेते हैं। माँ अपने बच्चों को घुमाती हैं। मेरी उम्र का तो यहाँ कोई भी नहीं। कई

बार जब कोई मिलता है तो वह या तो बैंक लेखाकार होता है या कोई क्लर्क। हम आपस में क्या बात करें? एक बार मेरी भेंट एक सेवनिवृत्त लैफ्टीनेंट कर्नल से हुई। मैंने उससे कहा इस वर्ष किसानों को अंगूर की बेलों पर शाम-सवेरे या एक दिन छोड़कर छिड़काव करना पड़ेगा और वह लेजर का किस्सा ले बैठा, ''एक न एक दिन लेजर तोपखाने का स्थान ले लेगा।'' उसने बताना शुरू किया कि उसकी तापों ने एंग्लो-फ्रेंच रेजीमेंट को किस तरह तहस-नहस कर दिया था। कैसै-कैसे तोपें दनदनाई थीं और उसे इस बात का बहुत सख्त अफसोस था कि लेजर तबाही का काम बिना शोर किए ही कर देगा, मानो शोर-शराबे के साथ तबाही करना अच्छी बात हो।

जो मुझसे युद्ध के बारे में बातचीत कर रहा है उससे अपने बारे में क्या बात करूँ? कई लोग दर्द और इलाज की बातें करते हैं कि उनको कैसे दर्द होता है, वे पीठ पर क्या मलते हैं। डॉक्टर ने कौन-सा प्लास्टर बताया। एक योगी यह बता रहा था कि कैसे हर सुबह वह शीर्षासन करता है तकि उसके नसों में रक्त-संचार अच्छी तरह हो। उसका चेहरा पीला जर्द था, मानो उसने जिंदगी-भर खून के एक कतरे के भी कभी दर्शन न किए हों। उसकी गर्दन झुकी हुई थी और बायीं भौंह मुड़ी हुई थी। यदि ऐसे योगी मुझसे एक कुदाल ले ले तो फिर देखें खून कैसे दौरा करता है। पिछले वर्ष मेरे शरीर के हर जोड़ में जोर का दर्द उठा था। मैंने सोचा ''मैं तो मर जाऊँगा।'' इतने टीके लगे कि शरीर छलनी हो गया और दर्द ज्यों का त्यों बना था। एक दिन मैंने देखा मेरा बहनोई कुदाल लिए कहीं जा रहा था।

''ठहरो, कहाँ जा रहे हो?'' मैंने उसे रोकते हुए पूछा।

''अपने फार्म की चरागाह को समतल करने जा रहा हूँ। बकरी के लिए चारा तो चाहिए। चलोगे मेरे साथ?''

मैं उसके साथ हो लिया। हमने चरागाह की भूमि को समतल किया, झाड़-झंखाड़ उखाड़ फेंके। शाम तक मेरा दर्द छूमंतर हो गया मानो किसी ने उसे बाहर खींच कर धरती में गाड़ दिया हो।

मैंने उससे कहा कि मुझे भी एक चरागाह दे दो। मैंने सोचा मेरे जोड़ों के दर्द का यही इलाज है।

वह मेरी इज्जत करता था क्योंकि मैंने ही सामूहिक खेती शुरू की थी। उसने मुझे एक चरागाह दे दिया। क्या आप जानते हैं यह चरागाह कहाँ था? बिल्कुल कुत्ते की दुम के नीचे यानी झाड़-झंखाड़ वाले इलाके में। पहले कभी यहाँ चरागाह ही था, किंतु देखरेख के अभाव में अब वहाँ झड़ियों के सिवाय कुछ नहीं था। उसे देखकर वैसा लगता होता था मानो मनुष्य के पाँव वहाँ कभी पड़े ही न हों। मैं एक अंगूर-उत्पादक था, फिर भी मैंने चरागाह को पूरी तरह समतल कर दिया। सबसे पहले मैंने झड़ियाँ काटीं। छोटी-छोटी

झड़ियाँ काटना सरल था। मैंने उन्हें काट कर एक ओर फेंक दिया। किंतु एक जंगली खजूर के पेड़ की जड़ें बहुत गहरी थीं। वह पेड़ टस से मस नहीं हो रहा था। मैंने उसे हिलाने की बड़ी कोशिश की, लेकिन वह नहीं हिला। मैंने उसकी जड़ों को खोदा, किंतु वह ढीठ की भाँति जमा रहा। मैंने एक जड़ को छोड़कर उसकी सभी जड़ें काट दीं। फिर भी वह पेड़ अड़ा रहा। पूरे एक हफ्ते तक मैं बनमानुष की तरह उससे लड़ता रहा – कभी टहनियाँ काटकर, कभी जड़ें खोदकर उसे उखाड़ने का प्रयास करता रहा। मैं रोज हाँफ जाता और पसीने से तर-बतर हो जाता। अखिरकार उसे उखाड़ना ही पड़ा, मैं उसे उखाड़ कर ही माना। उसके बाद मैंने उसके इर्द-गिर्द बाड़ लगा दी और जंगली खजूर के स्थान पर चेरी का वृक्ष लगाया। कलोवर के बीज और साथ-साथ नाशपाती के पेड़ भी लगा दिए। फिर उनकी सिंचाई कर वहाँ से चला आया।

एक दिन जब मैं अपने बहनोई के साथ वहाँ गया तो हम क्या देखते हैं – कलोवर खिल रहा था, चेरी पक रही थी और सुगंधयुक्त पवन के झोंके इतने सुहावने थे कि जंगल का हर पक्ष अमृतपान के लिए वहाँ आने लगा था।

शाम को मैं फार्म के चेयरमैन से मिलने गया।

''यदि आप देखना चाहते हैं कि मेरी टाँगों का दर्द कैसे काफूर हो गया तो मेरे साथ कल चरागाह चलिए।'' दूसरे दिन जब हम वहाँ पहुँचे तो उनके मुँह से अनायास ही निकला, ''अति सुंदर! यदि आपके पास सुरा-सुराही होती और हम पेड़ के नीचे बैठकर पीते तो हमारी हड्डियाँ हवा में तैरने लगती, तब आपको महसूस होता कि पाँव का दर्द कैसे काफूर होता है। मेरे पास कुछ 'बेकन' है।''

उन्होंने थोड़ी-सी 'बेकन' ली और चले गए। उन्होंने न तो चेरी को देखा और न ही सुगंधित पवन की खुशबू ली।

''हड्डियों का हवा में तैरना।''

तब से आराम करने की बात मुझे बार-बार कचोटती रहती है। एक बार मैंने किरचा से कहा, ''देखो, कामरेड इंजीनियर, तुम हमेशा मुझसे कहते रहते हो कि सब चिंताएँ छोड़ो और आराम से रहो। आप यह कैसे कर लेते हैं?''

''कैसे? खूब सोचो, फिल्में देखो। यदि कोई साथ खेलने वाला हो तो खूब खेलो। इसको कहते हैं ''चिंताएँ छोड़ो और मस्ती से रहो।''

''यह तो सड़ना हुआ। जानते हो, हर शाम तुम टी.वी. पर क्या देखते हो? यह तो काँच के फलक से सूप पीने जैसा है। मुझे तो वही फिल्म पसंद है, जिसमें मैं अभिनेता हूँ। शांति का अर्थ है – मौत।''

''कार्य-निवृत्त होना मनुष्य की स्वाभविक प्रवृत्ति है। आप आराम से जीवनयापन करो।'' किरचा ने कहा।

''एक जिंदा आदमी के लिए कार्य-निवृत्ति होना स्वाभविक नहीं है। तुमने कभी लोमड़ी को कार्य-निवृत्त होते देखा है? क्या तुमने देखा है कि उकाब घौंसले के समीप बैठा है और उसके बच्चे उसे चूहे खिला रहे हैं? उकाब अपनी अंतिम साँस तक उड़ान भरता है और अंततः गिर कर मर जाता है।''

मैंने उसे आँखों देखी एक घटना सुनाई। एक दिन मैं भेड़ें चरा रहा था। पास से किसी के गिरने जैसा स्वर सुनाई दिया। पेड़ के दूसरी ओर कोई पक्षी भूमि पर आ गिरा था। पक्षी उड़ान भरता नीचे की ओर आ रहा था। वह नीचे आते ही धड़ाम से गिर पड़ा। मैंने एकाएक उठने का प्रयास किया और देखा कि चरागाह में एक उकाब गिरा पड़ा है। उसके पंख फैले हुए थे और उन पर खरोंच तक नहीं थी। बेटे, वह उड़ान भरते हुए मर गया। यही सच्चाई है, उड़ान भरते-भरते मर जाना।''...''और तुमने मुझे सोने के पिंजरे में कैद कर दिया है।'' मैं उसे यह कहना चाहता था किंतु कहा नहीं।

किरचा मुझे देखने लगा, जैसे वह मुझे पहली बार देख रहा हो।

''हम आपको किसी डॉक्टर को दिखाते हैं, कहीं कुछ गड़बड़ है।''

''मुझे डॉक्टरों के हवाले कर दो और तुम चैन से टी.वी देखो।''

मैंने सोचा शायद वह मेरी बात समझ गया होगा। लेकिन नहीं, शब्द उसके लिए कोरे आँकड़े हैं – दो और दो चार – शून्य हमेशा शून्य।

सारी रात मेरे दिमाग में कुछ घूमता रहता है और मुझे हमेशा छेदता है। मैं ठंडी हवा के लिए खड़की खोल देता हूँ, लेकिन खिड़की खोलते ही गड़ियों का शोर गूँज जाता है। नीचे गली में मोटरबाइक दहाड़ती है और शोर से कान फटने लगते हैं। दिल दहल जाता है। इस बड़े शहर में लाखों लोग रहते हैं। एक मेयर और उसके कुछ सहायक हैं। क्या यहाँ किसी में ऐसी शक्ति नहीं जो हजारों वाहनों को हटा सके तकि शहर को उसे बहरा बना देने वाले शोर से बचाया जा सके। मैं खिड़की बंद कर अपना सिर नल के नीचे कर देता हूँ। राहत का केवल यही तरीका है। एक दूसरा तरीका भी है – यहाँ से चले जाने का। मैं साँस लेना चाहता हूँ जिंदा धरती पर! लेकिन इस बारे में किरचा से बात पत्थर से सिर फोड़ने जैसा है। वह बुरा लड़का नहीं है – वह स्वस्थ, परिश्रमी और ईमानदार है, लेकिन जैसे वह अपनी माँ की कोख से नहीं बैरल से पैदा हुआ हो क्योंकि उसे मानवीयता का अहसास नहीं, पेट्रोल का पता है। उससे बात करना बेकार है। अखिरकार मैं यह नोट लिखकर छोड़ जाता हूँ कि,

''किरचा, गाँव वापस जा रहा हूँ। पेड़ जब छोटे होते हैं तो उन्हें उखाड़ कर दूसरे स्थान पर बोया जा सकता है। तुम मुझे मेरी वृद्धावस्था में शहर ले आए और यहाँ मुझे दोबारा लगाने की कोशिश करने लगे। लेकिन बेटे, मेरी जड़ें यहाँ नहीं, गाँव में हैं। उनकी खोज में मैं वापस जा रहा हूँ। अगर नहीं गया तो मैं यहाँ मुरझा कर सूख जाऊँगा और

शांति से मर भी नहीं सकूँगा। मुझे माफ करना। मुझे गाँव से वापस लाने की कोशिश न करना। मैं गाँव जा रहा हूँ और तुम... तुम बगदाद जाते रहो।''

''तुम्हारा प्रिय पिता, गेत्यू।''

❑

जापानी लोक-कथा

अनु. पुष्कर राय जोशी

ओशी दोरी

तामुरानोगो में रहने वाला सोंजो एक सिद्धहस्त शिकारी था। एक बार शिकार के लिए निकलते समय आकानुमा के नजदीक नदी पार करते समय उसने एक हंस-हंसिनी की जोड़ी को नदी में तैरते देखा। उसने प्रत्यंचा पर तीर चढ़ाकर छोड़ दिया... हंस बिंध गया और हंसिनी आगे निकल गई। मृत हंस को कंधे पर डालकर सोंजो घर वापस आ गया।।

रात को सोंजो ने नींद में एक स्वप्न देखा, जिसमें एक स्त्री विलाप करती उससे कह रही थी, ''हमने तेरा क्या बिगाड़ा था जो हमारी जोड़ी तोड़ दी? उसका नतीजा तुम कल आकानुमा जाकर देख लेना।''

अगले दिन सुबह सोंजो उठा तो उसे रात का स्वप्न याद आ गया। वह तीर-कमान के साथ आकानुमा पहुँचा। उसने देखा कि नदी में हंसिनी अकेली तैर रही थी। वह शिकारी सोंजो को देखकर डर से भागने के बजाय तैरती हुई किनारे की तरफ उसके पास आ रही थी। सोंजो हैरान होकर उसे देखता ही रहा।

बिलकुल पास आने पर हंसिनी ने अपनी ही चोंच से अपने शरीर को मार-मार कर लहूलुहान कर डाला और कुछ ही क्षणों में उसके प्राण निकल गए।

सोंजो पर इस घटना का इतना अधिक गहरा असर हुआ कि वह अपना सिर मुंडवा साधु बन गया।

❑

अंबालाल साकरलाल देसाई
अनु. : रंजना अरगड़े

शांतिदास*

श्री अंबालाल साकरलाल देसाई (जन्म 25.3.1844, मृत्यु 12.9.1914) का जन्म अहमदाबाद में हुआ था। उन्होंने सन् 1867 में बी.ए. की। बाद में उन्होंने एम.ए. तथा वकालत की पढ़ाई की। वे सन् 1909 में राजकोट की गुजराती साहित्य परिषद के प्रमुख भी रह चुके थे। श्री देसाई व्यवसाय से वकील थे। 'शांतिदास' उनकी एकमात्र कहानी है, जो सबसे पहले सन् 1900 में 'लिखने वाला एक गुर्जर' इस नाम से प्रकाशित हुई थी। इस कहानी में तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का अच्छा परिचय मिलता है। इसके अलावा, यह भी पता चलता है कि उस समय की जाति-व्यवस्था में सद्‌भाव और ऐक्य था। इस कहानी का कथ्य तत्कालीन समाज के लिए आवश्यक एवं उपयोगी था। लोग स्वदेशी के प्रति जागृत हों और विदेशी माल का बहिष्कार करें, यह उस समय की माँग थी। इस कहानी को पढ़कर कई लोगों को स्वदेशी का महत्व समझ में आया।

चरोत्तर प्रदेश के महेमदाबाद से लगभग पाँच-सात कोस आगे पट्‌टीदारों की बस्ती वाला एक पुराना गाँव है। मूल में तो यह गाँव जमाबंदी वाला था। पर पचास-पिचहत्तर वर्ष से जमाबंदी टूटी है। नए सर्वे के हिसाब से अब खाता-बंदी व्यवहार का प्रचलन है।

गाँव में सवर्णों की अच्छी-खासी बस्ती है। लगभग दो सौ घर पट्‌टीदारों के हैं।

* लिखने वाला एक गुर्जर – इस नाम से सन् 1900 में प्रकाशित कहानी।

इसके अलवा बनिए, ब्राह्मण तथा शूद्र हैं। गाँव के लोग परिश्रमी हैं और उनमें एका है। गाँव के लोगों पर बहुत कर्जा भी नहीं है। साहूकार बनिया सूदखोरी के धंधे की अपेक्षा व्यापार का धंधा अधिक करते हैं। गाँव का चौपाल बड़ा और विशाल है, जिसे रैयत ने बाँधा है। हिंदुओं का मंदिर भी अच्छा-सा है। एक धर्मशाला भी है जिसमें राहगीर और साधु-संत ठहरते हैं। इसीलिए ठेठ कानम प्रदेश (वडोदरा और भरुच के बीच का इलाका) तक गाँव की बड़ी इज्जत है।

पटेलों की बस्ती में सबसे बड़ा और इज्जतदार घर शांतिदास पट्टीदार का है। शांतिदास के छह और भाई थे। फिलहाल वे सभी अलग-अलग रहते हैं। सातों लड़कों का घर-कुनबा अच्छा फूला-फला है। शांतिदास के अपने छह बेटे हैं। उनमें से बड़े पाँच व्यवसाय में लग गए हैं। पर छोटा भिखारीदास फिलहाल नौकरी ढूँढ़ रहा है। लगभग दसेक साल पहले शांतिदास की घरवाली के मन में यह विचार आया कि मेरे छह बेटों में से सबसे छोटा अंग्रेजी पढ़े और सरकारी नौकरी पर लग जाए तो कितना अच्छा हो। समय आते टोपी वालों की मेहरबानी हो और वह कलक्टर बन जाए और अपने घर समूचे परगने की हाकिमी आ जाए। शांतिदास के मन को यह बात बहुत अच्छी नहीं लगी थी। फिलहाल अठारह बरस अंग्रेजी शिक्षा लेने में लगते हैं। उनमें से अधिकतर तो अध-बीच में ही छोड़ देते हैं। बहुत कम अंत तक पहुँच पाते हैं। फिर जो थोड़े-बहुत पढ़ लेते हैं उनमें सभी को तो कलक्टरी मिलती नहीं है, इस बात को शांतिदास अच्छी तरह समझते थे। पर फिर उन्होंने यों सोचा कि एक तो लड़का सबसे छोटा और इस उम्र में आकर घर की औरत को नाखुश करना भी तो ठीक नहीं है। साथ ही उनके मन में एक यह बात तो थी कि ईश्वर की करनी, लड़के का नसीब खुले और माँ के मन की मुराद पूरी हो जाए तो बुढ़ापे में अपने सुख में कोई कमी नहीं रह जाएगी। पहले तो उन्होंने पत्नी की बात सुनी-अनसुनी कर दी। पर लड़के की माँ ने तो बात का पीछा नहीं छोड़ा। आखिर हार कर उन्होंने 'हाँ' कह दिया। अच्छा मुहूर्त देख कर उन्होंने अंग्रेजी पढ़ाने के लिए भिखारीदास को अहमदाबाद के लिए विदा किया। अंग्रेजी पढ़ाई करना इतना आसान नहीं है। फिर उसमें सरकारी नियम, और फिर कक्षा एवं परीक्षा आदि। इसलिए पढ़ते-पढ़ते तो कितने ही दिन लग गए। इसलिए कई-कई बार तो शांतिदास को बड़ी अकुलाहट होती। हर महीने खाने-पीने की फीस के मिलाकर दस-बारह रुपए तो अहमदाबाद भेजने पड़ते। पर जो संकल्प लिया सो वह तो पूरा करना ही था। अधूरी पढ़ाई छोड़ने का तो कोई फायदा नहीं, यह विचार करके वे कुछ बोलते न थे। आखिर सात सालों बाद भिखारीदास ने मैट्रिक की परीक्षा पास कर ली। यह समाचार मिला तो शांतिदास को बहुत अच्छा लगा। लड़के की माँ तो उनसे भी

ज्यादा खुश हुई और कहने लगी कि ''मैं कहती न थी कि मेरा भिखा नाम करेगा। पैसे धरे रखोगे तो थोड़े काम होगा। जब दूध का धुला हुआ धन खर्च किया है तब मेरा लड़का नागरों के लड़कों की टक्कर का हुआ है।''

यों भिखा की माई सबके सामने फूली न समाई। ''भिखा ने परीक्षा पास कर ली'' यह समाचार जैसे ही गाँव में पहुँचे, उन्होंने पूरे गाँव में गुड़ बाँटा। माताजी की पूजा की, घर में नैवेद्य बनाया, ब्राह्मणों तथा नाते-रिश्तेदारों को आमंत्रित किया। सभी आश्रितों को भी संतुष्ट किया।

भिखा जब गाँव लौटा तो गाँव के सभी लोग उसे न्यौता देने आए। तब उन्होंने शांतिदास से कहा – ''अब बेटे की पढ़ाई बीच में ही छुड़ा मत देना। अब तो भिखारीदास को बंबई भेजो। दो पैसों का करजा भी हो जाए तो भी पेट काटकर, मोटे अनाज की रोटी खाकर गुजर-बसरकर लेना। पर अब तो उसे बंबई भेज ही देना।''

यों सभी आग्रह करके कहने लगे। शांतिदास खाते-पीते गृहस्थ थे। उनके पास अच्छी-खासी खेती थी और ढोर-डांगर की भी कमी न थी। पर नकद पैसा उनके पास अधिक न था। इसलिए बंबई भेजने को लेकर उनका मन अभी डाँवा-डोल था। लेकिन लड़के, उसकी माँ और सारे गाँव के आग्रह का मान रखते हुए शांतिदास ने बेटे को बंबई न भेजने की जिद छोड़ दी। और भिखारीदास को बंबई पढ़ने भेजने का विचार निश्चित कर लिया और खर्चे के लिए पहली बार गाँव के साहूकार वनमाली दास से सौ रुपए कर्जा लिया। विदा होने से पहले उन्होंने भिखारीदास को एक ओर बुलाकर कहा – ''भैया, मेरे पास पैसे नहीं हैं और बंबई नगरी तो मानो इंद्रपुरी जैसी है। वहाँ भाँति-भाँति के जिन्नस मिलते हैं। तरह-तरह के शौक पाल सकते हो। इसलिए तुम अगर नीति का पालन कर, चोटी बाँधकर पढ़ना कबूल करो, तो ही तुम्हें भेजूँगा। नहीं तो इतना खर्चा उठाना मेरे बस की बात नहीं है। वरना यह बात यहीं से समेट लो।''

भिखा ने अपने पिता के पाँव छू कर कहा, ''बाबूजी, मैं एक भी पाई फिजूल की नहीं खरचूँगा। और अब मैं अठारह साल का हुआ, तो क्या यह भी न समझूँगा कि अपने घर में क्या है और क्या नहीं।''

सरकारी कॉलेज खुलते ही भिखारीदास ने बंबई जाकर दाखिला ले लिया और पढ़ाई शुरू कर दी। थोड़े दिनों तक तो पिता की सीख और अपना वचन हृदय में रख भिखारीदास ने खूब मेहनत की। लेकिन वहाँ भिखारीदास जैसे-जैसे पुराना होता गया और लड़कों का साथ बढ़ता गया तो वहाँ के पारसी लड़कों के चमचमाते जूते देखकर उसके मन में बार-बार यह बात आती कि ''कितना अच्छा होता अगर मेरे पास भी ऐसे जूते होते।'' इस बात को लेकर मन में बार-बार कुलाँचे भरता तो भिखारीदास उसे दबा देता। पर

बार-बार मन जूते की ओर दौड़ता। यूँ करते-करते कितने ही दिन बीत गए। पर आखिरकार भिखारीदास का मन रोके नहीं रुका। उसने सोचा कि मैं साल-भर में कुल मिलाकर तीन सौ रुपए खर्च करता हूँ। उसमें से तीन-चार रुपए के विलायती जूते लेने में कुछ कम नहीं हो जाएगा। और किसी भी तरह से बचत करके उतने पैसे तो निकाले ही जा सकते हैं। इससे पिता का भी मन रह जाएगा, अपना वचन भी निभ जाएगा और अपनी मनमानी चीज भी मिल जाएगी। यह सोचकर उसने विलायती जूतों की एक जोड़ी खरीद ली। फिर उन्हें पहनकर घूमता और चमचम करते जूतों को देख मन ही मन मुस्कुराता।

चार महीनों बाद कॉलेज बंद हुआ और भिखाभाई वापस अपने गाँव लौटा। नाते-रिश्तेदार, गाँव के लोग दो कोस पहले ही उसे लेने आए थे। सिवान पहुँचे तो भिखाभाई बैलगाड़ी से उतरे। पर उतरने से पहले उसने चमचम करते जूते निकाले और पहने और सबसे आगे चलने लगा। सब कहते ''कहो भैया, आ गए, आ गए, भैया कैसे हो, ठीक हो?'' तब वे धीरे से कहते, ''हाँ, हाँ''। गाँव के लड़के भी उसे देखने आए थे क्योंकि इस गाँव में से बंबई पढ़ने के लिए इसके पहले कोई गया ही न था। और भिखाभाई बंबई जाकर आए, यह बड़ी अचरज की बात थी।

गाँव में आने के बाद भिखारीदास सुबह-शाम जब हवाखोरी के लिए निकलता तब वह जूते पहनकर जाता जिसे देखने गाँव के सभी नौजवान भी निकलते। शांतिदास के अन्य बेटों और उनके बेटे मिलाकर कुल लगभग पंद्रह-बीस थे। अभी थोड़े दिन ही बीते थे कि उन्होंने अपनी-अपनी माँ से वैसे ही जूतों के लिए कहना शुरू कर दिया। शांतिदास के भाइयों के घर में भी जूतों के लिए क्लेश होने लगा। गाँव के अन्य पटेल-बनियों के लड़कों को भी ऐसे जूतों का मन हुआ। सभी लड़कों की माएँ अपने-अपने लड़कों की ओर से दबाव डालने लगीं। पर घर के मर्द उस बात को मानते नहीं थे। इस तरह सभी अच्छे घरों में थोड़ा-थोड़ा झगड़ा होने लगा। रोज की किट-किट से आखिर मर्द हार गए। एक-एक करके सभी ऐसे जूते माँगने लगे। हर बार जब छुट्टी होती तब भिखारीदास बंबई से वापस आता और गाँव के लोगों के लड़कों के लिए पच्चीस-तीस विलायती जूतों के जोड़े ले आता। यों दो-तीन साल बीत गए। गाँव में दूसरी किसी पूँजी में बढ़ोत्तरी हुई हो या नहीं, लेकिन जूतों की पूँजी तो बहुत बढ़ गई। गाँव में विलायती जूतों की तीन सौ जोड़ियाँ हो गईं। शाम को सभी नौजवान तालाब या खेतों की तरफ घूमने निकलते तो वही जूते पहनकर निकलते। और फिर ऐसे जूतों वाले लड़कों की लाइन आगे-पीछे हर घड़ी गाँव में घूमती दिखाई देने लगी। इससे कुछ लोग अंदर ही अंदर बात करने लगे कि ''गाँव की तो बड़ी शोभा बढ़ गई।'' तब कुछ और

कहते ''इसमें आखिर कमाया क्या? गाँव जल्दी भीख माँगता हो जाएगा।''

विलायती जूते ज्यादा टिकाऊ नहीं होते। साल-भर के भीतर फट जाते। धीरे-धीरे यह नौबत आ गई कि भिखाभाई के जाने वाले दिन गाँव के लोग डेढ़-दो सौ जूतों के पैसे थमा देते। और गाँव के माथे पर सालाना एक हजार रुपए का टिक्कस लगा।

एक बार भिखारीदास गर्मियों की छुट्टियों में गाँव वापस लौटा था और पिछले पहर आँगन में खटिया बिछाए बैठा था। पिता शांतिदास चबूतरे पर बैठे हाथ में चाँदी की नली वाला हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। कुछ अन्य पट्टीदार और गाँव के लोग भी वहाँ सहज भाव से बैठे थे और बातें कर रहे थे। वनमालीदास पोखर भी वहाँ आए थे।

वनमालीदास – ''बाप जी, जरा फुर्सत से अपने खाते पर नजर डाल लेंगे, तो अच्छा होगा।''

शांतिदास – ''क्यों भला?''

वनमालीदास – ''आँकड़ा जरा बढ़ता जा रहा है, यह तो आप जानते ही होंगे।''

शांतिदास – ''लिया व्रत तो पूरा करना ही होगा। लड़के को बंबई भेजने से पहले क्या स्थिति थी?

वनमालीदास – ''तब तो आपके सौ-पचास लेने बनते थे।''

यों बातें चल रही थीं, उतने में गाँव के दस-बीस मोची इकट्ठे होकर आ गए। वहाँ आते ही, आकर अपनी पगड़ियाँ उतारकर दहाड़ मारने लगे कि ''बापजी अब तो बहुत हुआ। अब आप खम्मा करो तो भला होगा।''

शांतिदास – ''क्या बात है कुछ कहो तो।''

मोचियों में से एक मोची (जिसका नाम था सोमला था) से कहा, ''सोमला, तू सयाना है। तू समझाकर पूरी बात बता। तुम लोगों को क्या चाहिए और क्या है तुम लोगों का दुःख। सगी माँ को भी दुःख बताना पड़ता है, तभी वह जान पाती है।

सोमला – ''दुःख तो बहुत है। न जीते बनता है, न मरते बनता है। अगर रोग के अनुसार उपाय हो तो राहत मिले। वो आपके हाथ में है। बापजी, आप उपाय करेंगे तो होगा, वरना कोई चारा नहीं है। और जिए बिना हमारा कोई वश नहीं है।''

शांतिदास – ''तुम निश्चिंत होकर कहो। अगर मेरे हाथ में होगा तो उपाय किए बिना नहीं रहूँगा।''

सोमला – ''बापजी, दुःख तो बहुत है। देखिए, हम मोचियों के आपके गाँव में बीस घर हैं। जब से गाँव बसा है, हम आपके पीछे-पीछे बसे हैं और आपकी शरण में पड़े हैं। आज तक हम गाँव के लोगों के जूतों और मशकों की सिलाई करके अपना गुजारा करते थे। उस पर अगर एकाध बीघा जमीन हो तो खेती भी करते थे। यों करते-करते

हम अपने दिन गुजारते थे। पर पिछले दो वर्षों से हमारा पूरा नहीं पड़ रहा, हमारे बच्चे भूखे मर रहे हैं। भिखाबापा जब से बंबई गए हैं, तब से हमारे दुःखों की शुरुआत हुई है। वे जूते की एक जोड़ी लाए तो हमने सोचा ठीक है, इसमें भला क्या बात होगी। पर अब तो गाँव में जूतों की सालाना चार-पाँच सौ जूतों की जोड़ियाँ बिकती हैं। हम एक साल में सौ-सौ जोड़ियाँ सिलते हैं, तो मजदूरी के 50-75 रुपए कमाते हैं और हमारे दस-बारह घरों का निबाह इसी से होता है। अब ये जूते आए तो पन्हियाँ बिकती नहीं। अब अगर पारसिनों की भाँति औरतें भी पन्हियाँ छोड़कर जूतियाँ पहनने लगेंगी तो औरतों के पैरहन सीने का भी हमारा काम तो गया। और जो थोड़ी रोजी-रोटी बाकी रह गई है, वह भी नहीं रहेगी। हमारा गुजारा तो गाँव के लोगों पर था। पर गाँव के लोग तो विलायती जूते पहनने लगे, इसलिए यह नौबत आ गई है। हमारे बच्चों को भरपेट रोटी भी नसीब नहीं हो रही। अगर अहमदाबाद के या अपने ही किसी और गाँव के जूते होते तो हमारे में से कोई जाकर वहाँ सीख आता। और अगर नहीं सीखते तो हम भूखे मरते। पर हमारे जातभाई या हमारी तरह धंधा करने वाले किसी और को तो रोजी मिलती। पर ये तो ठहरे विलायती जूते, इसलिए हमारे पास तो कोई चारा ही न रहा। हमें किसी भी तरह मन को मनाना नहीं है। अगर वैसा ही चलता रहा तो हम सब मर-मरा जाएँगे।''

भिखारीदास – ''कैसे बेवकूफ लोग हो। आपके वास्ते क्या हम जूते नहीं पहनें? आदमी को कुछ भी पहनने की छूट है। साहब लोग जूते पहनते हैं। बंबई में कितने ही लोग जूते पहनते हैं। क्या वे सब पागल लोग हैं। बेवकूफ, काइयाँ लोग।''

सोमला – ''पागल कहो या बौरा कहो। पर जब भूखे मरते हैं तो क्या करें।''

भिखारीदास – ''भूखे मरते हो तो उसमें गलती किसकी है। कोई और धंधा करो।''

सोमला – ''हम तो ठहरे मोची। भला दूसरा कौन-सा धंधा करें।''

भिखारीदास – ''दुनिया में कितने ही धंधे हैं। जो चाहे करो।''

सोमला – ''क्या हम कुम्हार का काम करें या दर्जी का काम करें या लुहार का काम करें या सुनार का काम करें या हजाम का काम करें। कहिए, क्या करें भिखाबापजी।''

भिखारीदास – ''तो मजदूरी करो। मजदूरी में तो किसी हुनर की जरूरत नहीं है।''

सोमला – ''हमने तो कभी मजदूरी नहीं की। तो भला हमसे मजदूरी कैसे होगी। मजदूरी में हाथ-पाँवों में ताकत चाहिए। हमें चार पैसे भी भला कौन देगा।''

भिखारीदास – ''अगर पूरा न पड़े तो दूसरे गाँव जाकर रहो।''

सोमला – ''इस गाँव में हमारी बीस पीढ़ियाँ हुईं और अब भला घर-बार छोड़कर

कहाँ जाएँ। यहाँ के घर उठाकर कैसे जाएँगे। नाते-रिश्तेदार, लेन-देन, सब तो यहीं ठहरा। फिर दूसरे गाँव भला कैसे जाएँ। बापजी, हमसे इतना सब कह रहे हो तो आप जो विलायती जूते नहीं पहनोगे तो क्या बर्बाद हो जाओगे। मोची मजूरी करे, दूसरा धंधा करे, गाँव छोड़ दे। उसके बजाय पट्टीदार विलायती जूते न पहनें तो क्या बिगड़ जाएगा।''

शांतिदास बीच में ही बोल पड़े, ''भिखा, तू बस कर। यह मोची जो कह रहा है वह बात सोचने-विचारने की है। अपनी नादानी से उसे जुदा न कर।''

इतने में गाँव के पारेख जगजीवनदास आए और कहने लगे कि यह क्या उधेड़बुन चल रही है।

शांतिदास – ''ये मोची दुःखी होकर शिकायत करने के लिए आए हैं कि गाँव में जब से विलायती जूते आए हैं, हम तभी से भूखे मर रहे हैं।''

जगजीवनदास – ''हाँ, मोची मुझसे कह रहे थे और दूसरी नीची कौमें भी कुछ-कुछ चिल्लमपों कर रही थीं। पूँजिया कुम्हार कह रहा था कि पिछले बरस मोचियों ने मेरी खपरैलें बिल्कुल ही खरीदी नहीं हैं। पशवा दर्जी भी कह रहा था कि मोचियों की सिलाई के पैसे पिछली बार मुझे मिले नहीं हैं। बात गंभीर है। इसलिए हम चार लोग मिलकर कुछ विचार करें तो अच्छा होगा।''

शांतिदास – ''आप कहें तो कल सब मिलते हैं।''

जगजीवनदास – ''ठीक है, मैं सभी को कहलवा देता हूँ। कल पिछले पहर रामनाथ में मिलेंगे।''

दूसरे दिन शांतिदास बापजी, उनके भाई-भतीजे, गाँव के अन्य पट्टीदार, जगजीवन पारेख, नाथाबाई मोदी, जुगलदास पटवारी, तुलसीराम मेहता आदि सभी गाँव के लोग रामनाथ महादेव के मंदिर में इकट्ठे हुए। वहाँ सभी नीची कौमों के लोग, पेट की आग के नाते बिन-बुलाए इकट्ठा हुए थे। सोमला मोची और दूसरे मोची, साथ ही दर्जी तथा कुम्हारों के नेता बिन-बुलाए पहले से ही हाजिर थे। सबने पहले तो मोचियों की बात सुनी। वहाँ भिखाभाई भी पहुँचे थे। उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा का हवाला देकर एक मोटी-सी, भारी-भरकम किताब के आधार पर एक लंबे भाषण की तैयारी कर रखी थी। वे खड़े हुए और बोलने लगे। पर उनके पिता और चाचा कहने लगे, ''बैठ जाओ, बैठ जाओ। हम जानते हैं कि तुम बहुत पढ़-लिख कर आए हो। अभी तो हमारे खर्चे पर जीते हो, जब दो पैसे कमाने लगो और यह जान लोगे कि दुनिया कैसे चलती है, तब अपना भाषण सुनाना।''

सबसे पहले सभी नीची कौम वालों की ओर से जगजीवन बोले। उन्होंने कहा कि ''रोना इन जूतों का ही है जिनके कारण आठ-दस मोचियों के घर का धंधा बंद

पड़ा है और उन्हें खाने-पीने के लाले पड़ गए हैं। मोचियों की हालत खस्ता हुई इसलिए कुम्हार-दर्जी जिनके वो ग्राहक थे, उनकी हालत भी खस्ता हो गई। जिनका दो-पैसों का लेन-देन था, ऐसे साहूकारों के पैसों की भी डूबने की नौबत आ गई है। इसकी चोट पूरे गाँव को लगेगी। कोई यह न समझे कि इसमें मुझे क्या लेना-देना। सभी के भले में ही हमारा भला शामिल है और बुरे में हमारा बुरा समाया है। मैं अहमदाबाद गया था। वहाँ पर भी यही रोना है। सुनारों के गहने विलायत से तैयार होकर आते हैं। वो इस कदर आँखों को लुभाने वाले होते हैं कि अपने असली गहनों को भी पीछे छोड़ जाते हैं। इसलिए सुनारों का धंधा बारह आने खत्म ही समझो। लुहारों का धंधा तो जैसे बिल्कुल ही बंद पड़ गया है। जो लुहार मजदूरी करते हैं, उन्हें अंग्रेजों के कारखानों में अच्छी मजदूरी मिल जाती है। पर चाकू, कैंची और कीलें बनाने वालों की रोजी तो बिल्कुल ही जैसे बंद पड़ गई है। करोड़ों रुपयों का विलायती कपड़ा आता है। इसके कारण बुनकर, छीपा, बंधेजगर आदि का धंधा बंद पड़ गया है। लोगों को कपड़े पहनने का बड़ा शौक है इसलिए शहर में दर्जी और धोबी के पौ-बारह हैं। पर कुल मिलाकर विदेश से माल आने के कारण कारीगरों और व्यापारियों को भारी नुकसान पहुँचा है। और अभी तो क्या हुआ है, शहर में तो कोई पूछने वाला भी नहीं है। इसलिए बड़ी तकलीफ होती है। हम लोग तो सब साथ मिलकर करते हैं, सो कोई उपाय खोजने में समर्थ हैं। इसलिए मुझे यह बात समझ में आती है कि हम अपने गाँव-भर के लिए कोई प्रस्ताव तो पारित कर ही सकते हैं।''

शांतिदास – ''कैसा प्रस्ताव?''

जगजीवनदास – ''फिलहाल तो इतना करें कि गाँव में कोई भी अन्य गाँव के जूते नहीं पहनेगा। इतना करने से मोचियों का दुःख तो दूर हो जाएगा।''

शांतिदास – ''क्यों, भवानीदास भाई, आप क्या कहते हैं?''

भवानीदास – ''हाँ, हाँ! एक नहीं सौ बार यह बंदोबस्त मंजूर।''

नाथाभाई मोदी – ''हमें भी मंजूर है। क्यों तुलसीराम मेहता?''

तुलसीराम मेहता – ''हमें भी सौ बार मंजूर।''

जुगलदास पटवारी – ''ठीक है, पर क्या घर की औरतों से पूछा है? बच्चे परेशान करेंगे तो उनकी माएँ उनका ही पक्ष लेंगी। उस बारे में क्या सोचा है?''

शांतिदास – ''बच्चे और उनकी माएँ झख मारें।''

सब कहने लगे ''वाह बापजी वाह, तो अब चलो और मंदिर में चलकर हाथ में पानी लो।''

सभी मंदिर के भीतर गए और ठाकुरजी के आगे संकल्प लिया और सभी ने अलग-अलग

कसम खाई – ''परदेशी जूते लाएँ तो ठाकुरजी की सौगंध।'' और फिर सभी अपने-अपने ठिकानों को लौट गए।

गाँव में बड़ी एकता थी। लोग दूर की सोचते थे। इसके बावजूद इस बार प्रस्ताव का पालन करने में थोड़ी आना-कानी हुई और फिर हर घर में थोड़ी किचकिच भी हुई। पर शांतिदास ने अपने घर से ही पहल की। भिखारीदास को पन्हियाँ पहनाईं। यों फटाफट करते हुए आखिरकार सभी गृहस्थों ने शपथ का पालन किया। छह महीनों में तो मोची फिर पहले जैसे खाते-पीते हो गए और दूसरे कारीगरों पर भी रौनक छा गई।

ऐसे में एक दिन नडियाद से मोटम बारोट आए थे। उन्होंने ये सभी बातें चौपाल में बैठकर सुनीं। उन्हें बहुत अच्छा लगा और खुशी के मारे अपने आप शांतिदास बापजी के घर आकर कहने लगे – ''बापजी, गाँव के मुखिया हो तो आपके जैसे हों। ऐन मौके पर आपने गाँव का पक्ष लेकर गाँव का दुःख दूर किया। आपके घर का धर्म पूरी दुनिया जानती है। आपने तो अपने गाँव और देश का गौरव बढ़ाया, सभी जाति-वर्णों की इज्जत-आबरू रखी है। इससे पहले भी आपका परिवार सरकार के दरबार में रैयत का पक्ष रखता था। फिलहाल सरकार की ओर से तो कोई तकलीफ नहीं है। पर लोगों का मन नए-नए किस्म की पहरन से छका हुआ है। इसके कारण सभी कारीगरों और कुल मिलाकर देश पर भारी विपदा पड़ी है। ऐसी विपदा में आपके जैसों का साथ मिला हुआ है और सुरक्षा भी मिली है। इससे देश का हमेशा भला ही होगा। आपके कुल में आप जैसे कई कुल-दीपक पैदा हों और ईश्वर उन्हें हमेशा आप जैसी ही मति प्रदान करें।''

❑

मर्से रुदुरेदा
अनु. समीर रावल

हज़ार का नोट

'कातालन' स्पेनवासियों की एक भाषा है। लेकिन विडंबना यह है कि स्पेन की प्रमुख भाषा 'स्पेनिश' के समक्ष यह एक छोटी भाषा सिद्ध होती है। इसे अल्पांश लोगों की भाषा तो कहा जा सकता है, किंतु गौण बिलकुल नहीं। कातालन एक नटखट से नाटे व्यक्ति के समान है, जो स्पेनिश भाषा की अनंत और प्रशंसनीय जीवन-शक्ति के सामने अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए संघर्ष कर रही है। स्पेनिश साहित्यकार इस भाषा में साहित्य रचना करके इस संघर्ष में योद्धा की भूमिका निभा रहे हैं। स्पेनिश लेखिका मर्से रुदुरेदा ऐसी ही कथाकार हैं, जिन्होंने कातालन में साहित्य सृजन किया है। रुदुरेदा की अनेक कहानियों का समीर रावल ने हिंदी में अनुवाद करके इन दोनों भाषाओं के बीच विशिष्ट संबंध स्थापित करने का सार्थक प्रयास किया है। उनके द्वारा अनूदित कहानियाँ यात्रा बुक्स से मर्से रुदुरेदा की 'संपूर्ण कहानियाँ' के रूप में प्रकाशित हैं। प्रस्तुत कहानी उसी संग्रह से ली गई है। समीर रावल को भारतीय अनुवाद के प्रतिष्ठित पुरस्कार 'डॉ. गार्गी गुप्त द्विवागीश पुरस्कार' (वर्ष 2011-2012) से सम्मानित किया गया है।

'उफ्फ... तंग आ गई हूँ इतने दुर्भाग्य से!'

उसने पुराना, घिसा-पिटा कोट पहना और एक ही झटके में दरवाजा खोल दिया। ड्योढ़ी की दूसरी तरफ पड़ोसन प्रवेश के पारकेट फर्श पर मोम फैला रही थी। जब तक उसे ध्यान आया तब तक पड़ोसन उसे देख चुकी थी।

—"क्या बढ़िया दिख रही हो... आँखें वगैरह भी रंग की हैं..." वह अपने घुटनों

पर खड़ी हो गई और मुँह खोले उसे देख रही थी... "बाल भी घुँघराले कर लिए हैं... काश मेरे पास तुम्हारे जैसे बाल होते...। आने में देर होगी?"

—"पता नहीं। मैं एक सहेली से मिलने जा रही हूँ। इसाबेल से, जो बहुत बीमार है।" दो बार चाबी घुमाकर दरवाजा बंद करते हुए उसने कहा। सड़क की रोशनी और खत्म होने वाली शाम ने उसे हैरान कर दिया। अचानक उसने अपनी टाँगों में एक किस्म की कमजोरी महसूस की, जैसे उसकी इच्छा-शक्ति उसे छोड़ने वाली हो... पर वह अपनी इच्छा-शक्ति के बारे में काफी निश्चिंत थी। कुछ भी उसे नहीं रोक पाता। बगल से गुजरने वाले पहले आदमी ने उसे एक सीटी मारी और उसे देखते हुए खड़ा रह गया। "मैंने आँखें कुछ ज्यादा ही रंग ली हैं। वही लग रही होऊँगी... बिल्कुल वही जो मैं लगना चाहती हूँ!"

उस समय *बुलेवार रोशेशुआर्ट* से कम लोग गुज़र रहे थे। डनकर्क मार्ग के कोने पर हमेशा की तरह फूलों की गाड़ी लिए जुजैन खड़ी थी। वह कारनेशन फूलों पर पारदर्शी कागज लिपटा रही थी। 'वह मुझे इतना मेकअप लगाए न देखे!' मैंने यह सोचा ही था कि जुजैन ने अपना सिर उठाया।

—"गुड इवनिंग। आज कोई फूल नहीं चाहिए?"

वह तो गाड़ी के सारे फूल ही ले जाती। कारनेशन अभी-अभी काटे होंगे व पार्मा के वायलेट फूलों के छोटे गोल गुच्छों को देखकर उसे लग रहा था कि स्लेटी रंग की पोशाक पहने देवियाँ हों, अपनी हैटों पर चादर ओढ़े ताकि उन्हें मीठी रोशनी व शनील के सोफों से चमकते हुए कमरों के अंदर क्रिस्टल के फूलदानों में भरने के लिए ले जाया जाए।

—"बाद में, जब यहाँ से दोबारा निकलूँगी।"

उसने अपना खाली बटुआ छाती से चिपकाया। कोई उसके पीछे आ रहा था। एक दुकान के शीशे में उसने उस आदमी को देखा, जिसने एक पल पहले सीटी बजाई थी और मुड़कर उसे देखा था। वह किसी दूसरे शीशे के सामने उसे अधिक अच्छी तरह से देखने का इंतजार कर रहा था। वह वहाँ रुक गई। उसका दिल धड़क रहा था और वह नहीं जानती थी उसे देखने के लिए क्या करे। जैसे उसकी आँखें रुकावट पैदा कर रही हों। उन्हें कुछ ज्यादा ही रंग दिया था।

—"आपको कुछ पीने के लिए निमंत्रित कर सकता हूँ?"

भले ही उसे तकलीफ हो रही थी, वह देख पा रही थी कि वह एक जवान और पतला लड़का था। वह एक रेनकोट पहने था और एक हरी बोतल के रंग की फेल्ट हैट। उसे बिना जवाब दिए वह चलने लगी। जब वे पिगाल्य प्लाजा पहुँचे तो वह

उसके बीच तक गई, एक अखबारों वाले कियोस्क में कुछ पत्रिकाएँ देखीं और मेट्रो के लिए नीचे उतरने लगी। फिर रुकी और बन्नी पर पीठ टिकाकर खड़ी हो गई। जब वह सोच रही थी कि सीटी वाले आदमी को खो चुकी है, तब अचानक उसने उसे सड़क पार करते देखा। सारे आदमी उसकी खूबसूरती को ताक रहे थे। एक शक्तिशाली झटके से उसने अपने बालों को झाड़ा... और कान में एक गर्म आवाज आई।

—"आना चाहती हो?"

उसने लड़के को ऊपर से नीचे तक देखा, हिसाब लगाया और धीमे से परंतु दृढ़ता से कहा, "पाँच सौ।"

ठंड की एक सिहरन उसकी देह में व्याप्त हो गई। कुछ देख नहीं पा रही थी। टाँग की एक माँसपेशी बिना रुके झटक रही थी और उसके सिर में दर्द हो रहा था। लड़के ने उसे बाँह से पकड़ा और एक गहरी आवाज में फुसफुसाकर बोलाः

—"तुम्हारा मूल्य उससे दोगुना है। हजार!..."

... ...

वह बटुआ छाती से लगाए हुई थी। उसके होंठों से रंग निकल चुका था, वे हल्के पीले से थे। सिर के एक आकस्मिक झटके से उसने माथे के बाल हटाए। वायलेट फूलों को देखते हुए कहा, "एक छोटा गुच्छा। वह सबसे पीछे वाला। यह सबसे अधिक सुंदर है।" जुजैन मुस्कुराई, "आज खुद ही उसे निकाल लीजिए।"

उसने शर्म दिखलाते हुए हाथ बढ़ाया और उसे उठा लिया। वह सफेद कारनेशन फूलों के दो पुलिंदों के पास था। जुजैन ने उन पर वही पारदर्शी कागज लिपटाया जो अभी भी फूलों को अधिक रहस्यमयी बना रहा था और उसने बटुए से हजार का नोट निकाला। जुजैन ने उसे देखा। "पता नहीं पूरे छुट्टे होंगे कि नहीं..." उसने उसे वायलेट फूल दिए, नोट लिया और उसे फूलों के ऊपर खोलकर रख दिया। अपने बटुए में जाँचने लगी।

—"नहीं, पूरे नहीं हैं। अभी ब्रेड की दुकान पर जाकर छुट्टे लाती हूँ।"

जब वह इंतजार कर रही थी एक महिला गाड़ी के सामने आकर रुक गई।

—"कारनेशन फूलों का क्या दाम है?"

—"पता नहीं। एक मिनट ठहरिए। बेचने वाली छुट्टे लेने गई है... अभी आती ही होगी।"

वह एक मध्यम आयु की महिला थी। उसके गाल गोल थे और उन पर कोमल गुलाबी रंग का मेकअप लगा था।

—"आज फूल ताजे हैं। अगर पार्मा के वायलेट सुगंध देते तो शायद उन्हें खरीदने

का सोचती, पर मेरी बेटी, पता है? वह कारनेशन फूलों के लिए पागल है। आपका गुच्छा सुंदर है... बहुत महँगा है?"

वह जवाब देने ही वाली थी कि जुजैन आ गई। एक उँगली से गाल खरोंच रही थी और नोट को देखते-देखते बोली—

—"आपका नोट नकली है। देखिए? इन धारियों से पता चलता हैः इन्हें खूब बैंगनी होना चाहिए और ये नीली हैं। अगर आपको याद है किसने दिया है तो अभी भी वापस कर सकती हैं।"

उसने वायलेट फूल उसी जगह रख दिए जहाँ से उठाए थे। सफेद कारनेशन के बड़े पुलिंदे की बगल में। जुजैन ने कहा, "चिंता न कीजिए, किसी और दिन पैसे दे दीजिएगा... इन्हें ले जाइए..."

—"नहीं! नहीं! धन्यवाद।"

वह हाथ में नोट को मोड़े जल्दी-जल्दी चल रही थी। द्रव का एक घूँट उसके पेट से गले तक चढ़ गया, इतना खट्टा कि उसे अपनी आँखें बंद करनी पड़ीं। वह बंद मुँह करे गहरी-गहरी साँसें ले रही थी। फ्लैट पहुँची। बीच के बरामदे से तड़कों की महक आ रही थी। उसने एक लिफाफे में नोट डाला और उसे चार पिनों से शीशे वाली अलमारी के आखिरी दराज के नीचे जमा दिया। हाथ से गाल को छुआ, उबल रहा था। दीवार को अपलक देखती रही, पहले कभी भी ध्यान नहीं दिया था कि वॉल-पेपर के चित्र थोड़े-थोड़े हँसने जैसे लगते थे। उसकी टाँग की माँसपेशी ने फिर झटकना शुरू किया। "अब क्या?" अचानक से वह झुकी और लिफाफे को एक झटके से उखाड़ लिया। जब गैस जल चुकी थी तब नोट का एक कोना उसके ऊपर ले गई और उसके जलने का इंतजार करने लगी। उसकी उंगलियाँ ज्यादा भींचने पर दर्द कर रही थीं। फिर बैठक में गई। कोट निकाला, उसे टाँगा और रात का खाना बनाने लगी। उसका पति जल्द ही आने वाला था।

Tomas Transtromar
English Trans. Goran Malmqvist

The Blue House

It is night with glaring sunshine. I stand in the woods and look towards my house with its misty blue walls. As though I were recently dead and saw the house from a new angle.

It has stood for more than eighty summers. Its timber has been impregnated, four times with joy and three times with sorrow. When someone who has lived in the house dies it is repainted. The dead person paints it himself, without a brush, from the inside.

On the other side is open terrain. Formerly a garden, now wilderness. A still surf of weed, pagodas of weed, an unfurling body of text, Upanishades of weed, a Viking fleet of weed, dragon heads, lances, an empire of weed.

Above the overgrown garden flutters the shadow of a boomerang, thrown again and again. It is related to someone who lived in the house long before my time. Almost a child. An impulse issues from him, a thought, a thought of will : "create...draw..." In order to escape his destiny in time.

The house resembles a child's drawing. A deputizing childishness which grew forth because someone prematurely renounced the charge of being a child. Open the doors, enter! Inside unrest dwells in the ceiling and peace in the walls. Above the bed there hangs an amateur painting representing a ship with seventeen sails, rough sea and a wind which the gilded frame cannot subdue.

It is always so early in here, it is before the crossroads, before the irrevocable choices. I am grateful for this life! And yet I miss the alternatives. All sketches wish to be real.

A motor far out on the water extends the horizon of the summer night. Both joy and sorrow swell in the magnifying glass of the dew. We do not actually know it, but we sense it: our life has a sister vessel which plies an entirely different route. While the sun burns behind the Islands.

❑

टोमास ट्रांसट्रोमर
अनु. : अभिषेक अवतंस

नीला घर

इस रात सूरज की किरणें तेज हैं। मैं पेड़ों के बीच खड़ा होकर धुँधली नीली दीवारों वाले अपने घर की ओर देख रहा हूँ। ऐसा लगता है कि मैं मर गया हूँ और घर को एक नए नज़रिए से देख रहा हूँ।

यह घर अस्सी से ज़्यादा गर्मियों से यहाँ खड़ा है। इसकी लकड़ी चार बार खुशियों से और तीन बार ग़मों से भरी गई है। जब इस घर में रहने वाला कोई मरता है तो इसकी दीवारों पर नया रंग आ जाता है। मरा हुआ आदमी खुद इसे बिना ब्रश के अंदर से रंगता है।

बाहर खुली जगह है। पहले वहाँ बगीचा था और अब जंगल। झाड़ियों की खामोश लहरें, झाड़ियों के पगोडा, बेजान लिखी इबारतें, झाड़ियों के उपनिषद, झाड़ियों के समुद्री-दस्यु जहाज़, ड्रेगन के सिर वाले, भाले-बरछे, झाड़ियों का साम्राज्य।

बेतरतीब बढ़े हुए इस बगीचे के ऊपर एक बुमेरांग की छाया लहरा रही है जो बार-बार उछाला जा रहा है। यह बुमेरांग उस आदमी का है जो मुझसे पहले इस घर में बहुत पहले रहा करता था। लगभग बच्चा था। उसके पास एक आवाज़ आती है, एक विचार, एक सोच : रचना करो, लिखो... समय रहते हुए, भाग्य से मुक्त होने के लिए।

यह घर एक बच्चे के बनाए हुए चित्र से कुछ मेल खाता है। एक उधार में मिला हुआ बचपना क्योंकि किसी ने अपने समय से पहले ही बच्चा बने रहने से इनकार कर दिया था। दरवाज़ा खोलो... प्रवेश करो... छत पर अशांति और दीवारों पर शांति है। बिस्तर के ऊपर सत्रह पतवारों वाला जहाज़, अशांत समंदर और फ्रेम से बेकाबू हवाओं के साथ एक अनगढ़ तस्वीर लटकी है।

यहाँ हमेशा पूर्वता रहती है, चौराहों के पहले, न वापस होने वाले विकल्पों के काफी पहले। मैं जिंदगी का शुक्रिया अदा करता हूँ। फिर भी मैं विकल्पों की कमी महसूस करता हूँ। सभी चित्रों को असली होना चाहिए था। कहीं दूर पानी की मोटर गर्मी की रातों के क्षितिज को और फैला रही है। ओस की बूँदों के आतशी शीशे में खुशियाँ और ग़म दोनों बढ़ जाते हैं। हम इसे नहीं जानते हैं, पर हम इसे महसूस कर सकते हैं, हमारी जिंदगी के पास एक और सगा-जहाज़ होता है जो सर्वथा अलग ही रास्ते पर चलता है। जबकि सूरज किन्हीं द्वीपों के पीछे जल रहा होता है।

❑

Pablo Naruda

The Stroke

Ink that entrance me
drop by drop
and goes guarding the trail
of my reason and unreason
like a large scar that's barely
seen when the body's asleep
in its discourse of dissolution
Better perhaps if
all your essence
where to have emptied in one drop
and thrown itself on a single page
stained it with a single green star
and that only that stain
were to have been all
I had written in the whole of my life,
without alphabet or interpretations;
a single dark stroke
without words.

❑

पाब्लो नेरुदा
अनु. : पुष्कर राय जोशी

स्ट्रोक

स्याही, जो सम्मोहित करती मुझको
बूँद-बूँद
और बहती रक्षती मेरी तर्क-वितर्क की राह को
एक बड़े गहरे जख्म की तरह जो
केवल दिखता, जब शरीर हो सोया हुआ
इसके विसर्जन के विमर्श में
बेहतर होना शायद, जो
तेरा समग्र सत्व
एक बूँद में खाली हो
और एक ही कागज में फेंका हो
और इसमें एक हरित तारे जैसा दाग लगा हो
तो वही केवल दाग
वह सब ही होता
जो मैंने लिखा जिंदगी-भर
मूलाक्षर के अर्थघटनहीन
केवल एक गहरा (घिसरका) स्ट्रोक
शब्दहीन।

❑

अजय कांडर

परकाच वाटत राहतो मी मुलीला

शेतावरून आल्यावर मुलानं
आईला सहज बिलगावं
तसं वाटत राहतं
ऑफिसमधून आल्या, आल्या
माझ्याही मुलीनं मारावी घट्ट मिठी आपल्यालाही
परंतु परकाच वाटत राहतो मी तिला
ती माझ्या जवळ येतच नाही, लाडेलाडे बोलतच नाही
'तेव्हा बायको उद्‌गारते,
घरात शिरताना माणसानं विसरून जावं बाहेरचं जग
मोकळेपणा ठेवावा स्वभावात
वागण्या-बोलण्यातूनही होऊ नए
आपण नेमके कोण आहोत याची जाणीव'

बायकोच्या बोलण्याकडे दुर्लक्ष करत
टी.व्ही. चं बटन ऑन करता-करता
मुलीचे नकारात्मक भाव ओळखूनही
मी प्रयत्न करतो तिला उचलून घेण्याचा
तेव्हा बातम्यांचे वृत्तांत पाहणे
आणि मुलीशी खेळत राहणे
हे एकच वेळी चालू राहते
मध्येच खणखणतो फोनचा आवाज

रिसीव्हर उचलण्याआधीच
मुलगी माझ्या हातून निसटून धूम ठोकते.
मी फोनवर बोलण्याच्या नादात
विसरूनही जातो, तिचं आपल्यापासून दूर जाणं

टी.व्ही. पाहतो, पेपर वाचतो,
आलंच तर टपाल फोडतो.
मोबाईलशी चाळे सुरुच असतात
ऑफिसमधून आल्यावरचा हा नित्याचा दिनक्रम
एव्हाना दिवसभर मातीत दुडदूडू धाऊन–खेळून थकलेली
मुलगी झोपी जाते
ऑफिसच्या वेळेच्या चौकटीत बसून घेत असतो स्वतःला
म्हणून तर सकाळी माझा चेहराही दिसत नाही तिला
आणि सुट्टीच्या दिवशी
नातलगांची लग्नं, कुणाचा बारसा, सासुरवाडीला जाणे,
मित्रांच्या घरी तासनतास गप्पा,
नाहीच तर एखादा वाङ्मयीन कार्यक्रम
सान्या जगाशीच जोडून घेत राहतो आपण चोवीस तास
मुलीला देऊ शकत नाही वेळ
याची खंत बाळगत

बालवाडीत जाणारी माझी मुलगी
आता स्वतः चं नाव छान लिहिते इतरांप्रमाणे
फक्त फरक इतकाच असतो
स्वतःच्या नावापुढं
नेमक बापाचंच नाव लिहायला विसरते हल्ली!

❑

अजय कांडर
अनु. : डॉ. सुधाकर शेंडगे

पराया ही लगता हूँ मैं अपनी बच्ची को...

खेत से लौटने पर जैसे
बच्चा माँ से लिपटता है
ठीक ऐसा ही चाहता हूँ मैं
दफ्तर से जब लौटता हूँ
मेरी बच्ची आकर लिपट जाए मुझसे
लेकिन मैं उसे लगता हूँ पराया ही
वह न आती है मेरे पास, न ही बोलती है लाड़-प्यार से
तब बीवी मुझसे कहती है –
'घर में कदम रखने के बाद
मनुष्य को भूल जानी चाहिए बाहर की दुनिया
हर बात में हो खुलापन
आचार-विचार से न लगे कि हम कोई तीसमार खाँ हैं।'

बीवी की बातों की ओर ध्यान न देकर
टी.वी. का बटन ऑन कर
बच्ची का नकारात्मक भाव जानने के बावजूद
उसे उठाने की करता हूँ मैं कोशिश
तब एक ओर खबरों को सिलसिलेवार देखना
और बच्ची से खेलना – दोनों एक साथ चलता रहता है
बीच में ही बज उठती है फोन की घंटी

रिसीवर उठाने से पहले
बच्ची मेरे हाथ से मुक्त हो भागने लगती है
फोन पर हो रही बातों में मशगूल
भूल जाता हूँ मैं उसका अपने से दूर जाना।

टी.वी. देखना, अखबार पढ़ना
दोपहर में आई डाक देखना
और मोबाइल से खेलते रहना
दफ्तर से लौटने के बाद यही होता है नित्य कर्म
इस बीच दिन-भर मिट्टी में दौड़ने वाली
खेलकर थकी-हारी मेरी बच्ची सो जाती है
दफ्तर के समय की सीमा में
बाँध लेता हूँ मैं अपने आपको
इसी कारण नहीं देख पाती वह मेरा चेहरा
छुट्टी के दिन किसी रिश्तेदार की शादी
किसी का नामकरण, कभी ससुराल जाना
और मित्रों के घर घंटों गपशप करते बैठना
बहुत हुआ तो कोई साहित्यिक समारोह
सारी दुनिया से जोड़ लेता हूँ चौबीसों घंटे
पर अपनी बच्ची को
नहीं दे पाता मैं उसका अपना समय
इसी चिंता में मैं खो जाता हूँ।

बालवाड़ी जाने वाली मेरी नन्हीं बच्ची
अपना नाम बखूबी लिख रही है
अन्य बच्चों की तरह
फर्क केवल इतना ही है कि –
वह अपने नाम के साथ अपने बाप का
नाम लिखना ही भूल जाती है...!

❑